आचाराङ्ग के सूक्त

अनुवादक

श्रीचन्द रामपुरिया, बी० कॉम०, बी० एल०



तेरापंथ द्विशताब्दी समारोह के अभिनन्दन में प्रकाशित

प्रकाशक
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
३, पोर्चगीज चर्च स्ट्रीट
कलकत्ता
०
प्रथमावृत्ति
जून, १९६०
आषाढ़ २०१७
०
प्रति संख्या
१५००
०
पृष्ठ संख्या
३२०
०
मूल्य
तीन रुपये
०
मुद्रक
ओसवाल प्रेस
कलकत्ता—७

प्रकाशकीय

आचाराङ्ग का प्रथम श्रुतस्कंध भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से आगमों में प्राचीनतम माना गया है। इस पुस्तक में इस श्रुतस्कंध के सूत्रों का पाठ है और साथ ही में उसका हिन्दी अनुवाद। आगम साहित्य-माला का यह प्रथम पुष्प है जिसे महासभा द्विशताब्दी समारोह के अभिनन्दन में प्रकाशित कर रही है। ये सूक्त महावीर की मौलिक वाणी का मार्मिक सन्देश पाठकों को देंगे।

तेरापंथ द्विशताब्दी व्यवस्था उपसमिति
३ पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता—१
२८ जून १९६०

श्रीचन्द रामपुरिया
व्यवस्थापक,
साहित्य विभाग

भूमिका

१ आचाराङ्ग का स्थान

जैन आगमों का नाम गणिपिटक रहा। गणिपिटक में बारह अङ्गों की गणना होती है। इन अङ्गों में आचाराङ्ग का स्थान प्रथम है[1]।

बारह अङ्गों में किसका क्या स्थान है यह बताने के लिए श्रुत पुरुष की कल्पना मिलती है जिसमें 'आचाराङ्ग' को दाहिने चरण और 'सूत्रकृतांग' को बायें चरण के रूप में निरूपित किया है[2]। शरीर में

१—समवायाङ्ग सू० १३६ इमे दुवालसंगे गणिपिडगे पन्नत्ते, तं जहा आयारे ... दिट्ठिवाए

२—(क) नंदीसूत्र ४३ की चूर्णि पत्र ४७

पायदुगं जंघोरू गायदुगद्धं तु दोय बाहू य।
गीवा सिरं च पुरिसो बारसअंगो सुतविसिट्ठो॥

(ख) समवायाङ्ग १३६ की टीका : तत्र श्रुतपरम पुरुषस्य अङ्गानीवाङ्गानि द्वादशाङ्गानि आचारादीनि यस्मिंस्तद् द्वादशाङ्गम

पैरों का स्थान अनन्य है। आचाराङ्ग और सूत्रकृतांग ये श्रुत पुरुष के दो पैर हैं अर्थात सारा श्रुत इन्हीं के आधार पर खड़ा है। उनके बिना अन्य अङ्ग पंगु हैं। यह कल्पना भी आचाराङ्ग के महत्त्व को प्रदर्शित करती है।

निर्युक्ति के अनुसार तीर्थ-प्रवर्तन के समय तीर्थंकर सब प्रथम आचाराङ्ग का उपदेश करते हैं और उसके बाद अन्य अङ्गों का[1]। गणधर इस उपदेश को प्रथम आचाराङ्ग का सूत्रबद्ध करते हैं और फिर अन्य अंगों को। दूसरे मत के अनुसार तीर्थंकर सब प्रथम पूर्वों का उपदेश देते हैं पर सूत्र ग्रन्थन सर्व प्रथम आचाराङ्ग का ही होता है[2]। तीसरे मत के अनुसार सब प्रथम उपदेश और सूत्र रचना

१—(क) आ० नि० ८

सव्वेसिं आयारो तित्थस्स पवत्तणे पढमयाए।
सेसाइं अंगाइं एक्कारस आणुपुव्वीए॥

(ख) आ० चू० पत्र ३

सव्व तित्थगरा वि आयारस्स अत्थं पढमं आइक्खंति ततो सेसगाणं एक्कारसण्हं अंगाणं ताए चेव परिवाडिए गणहरा वि सुत्तं गुंथंति

२—नंदी चूर्णि पत्र ५६ नंदी टीका पत्र १०७, नंदी वृत्ति पत्र २४०

पूर्वों की रचना हुई है पर स्थापना सर्व प्रथम आचाराङ्ग की हुई है[1]। इसमें दो मत नहीं कि आचाराङ्ग को विषय-वस्तु की दृष्टि से अङ्गों में प्रमुख स्थान प्राप्त है।

निर्युक्तिकार ने आचाराङ्ग की महिमा उसे 'अङ्गों में प्रथम', 'प्रवचन का सार' कह कर की है और कहा है कि इसमें मोक्ष का उपाय बतलाया गया है[2]। साथ ही उसे 'वेद' शब्द से सम्बोधित किया है[3]।

आगमों में श्रुतज्ञान के दो भेद मिलते हैं—(१) अङ्गप्रविष्ट और (२) अङ्गबाह्य[4]।

१—समवायाङ्ग सूत्र १३६ की टीका

२—आ० नि० ९ :

आयारो अंगाण पढमं अंगं दुवालसण्हंपि।
इत्थ य मोक्खोवाओ एस य सारो पवयणस्स॥

३—आ० नि० ११

णवबंभचेरमइओ अट्ठारसपयसहस्सिओ वेओ।

४—नंदीसूत्र सू० ४४ : तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तं जहा अंगपविट्ठं अंगबाहिरं च

गणधरों के प्रश्न करने पर तीर्थंकर उत्पाद-व्यय ध्रौव्य रूप त्रिपदी का उपदेश करते हैं। उस पर से उत्पन्न श्रुत को अंगप्रविष्ट कहते हैं। बिना प्रश्न अर्थ प्रतिपादन के लिए उपदिष्ट श्रुत अङ्ग-बाह्य कहलाता है। अङ्गबाह्य और अंगप्रविष्ट की दूसरी परिभाषा इस प्रकार है सब तीर्थंकरों के तीर्थ में अवश्य उत्पन्न होने वाला अर्थात् नियत श्रुत अंगप्रविष्ट और अनियत श्रुत—किसी तीर्थंकर के तीर्थ में होने वाला और किसी के तीर्थ में नहीं होने वाला अंगबाह्य कहलाता है[1]। आचाराङ्ग अंगप्रविष्ट श्रुत की कोटि में आता है[2]।

२ श्रुतस्कन्धों की अपेक्षाकृत प्राचीनता

आचारांग दो श्रुतस्कन्धों में विभक्त है। पहले श्रुतस्कन्ध में नौ अध्ययन रहे। अब आठ हैं[3]। दूसरे स्कन्ध में पांच चूला रही। अब

१—विशेषावश्यकभाष्य बृहद्वृत्ति पत्र २८८

२—नंदीसूत्र सू० ४५ से किं त अंगपविट्ठं अंगपविट्ठं दुवालसविहं पण्णत्तं तजहा—आयारो १ दिट्ठिवाओ १२

३—नियुक्तिकार भद्रबाहु के समय तक नौ अध्ययन रहे। शीलांकाचार्य 'महापरिज्ञा' नामक अध्ययन को लुप्त बताते हैं। नियुक्ति के मत से यह अध्ययन ७ वाँ था। दूसरे मत के अनुसार ८ वां, और समवायाङ्ग सू० ६ के मत से ६ वाँ।

चार हैं[1]।

दूसरे श्रुतस्कंध में कुल १६ अध्ययन हैं। इन अध्ययनों में से प्रत्येक को 'आचाराग्र' कहा गया है। आचाराग्रों का समूह होने से दूसरे श्रुतस्कंध का नाम 'आचाराग्र' मिलता है।

प्रथम श्रुतस्कंध के नौ अध्ययनों में से प्रत्येक का नाम ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य अध्ययनों का समूह होने से प्रथम श्रुतस्कंध का नाम ब्रह्मचर्य मिलता है।

प्राचीन उल्लेखों से पता चलता है कि मूल आचाराङ्ग प्रथम श्रुतस्कंध प्रमाण था। द्वितीय श्रुतस्कंध बाद में उसमें जुड़ा[2]। निर्युक्तिकार कहते हैं—'वेद—आचार—ब्रह्मचर्य नामक नौ अध्ययनात्मक है जिसमें अठारह हजार पद हैं। वह बाद में पंच चूला

१—निर्युक्तिकार भद्रबाहु के समय पाँचवीं चूला रही। उसके बाद लुप्त हो गई। इस चूला के दो नाम मिलते हैं—(१) निशीथ और (२)। आचार प्रकल्प (आ० नि० २९७ टीका)

२—आ० नि० १२

आयारग्गाणऽत्थो बंभचेरेसु सो समोयरइ।
सोऽवि य सत्थपरिण्णाए पिंडिअत्थो समोयरइ।

सहित हुआ जिससे पद-परिमाण में वह 'बहु' और 'बहुतर' हुआ[1]।'' 'बहु' और 'बहुतर' शब्द पर टीका करते हुए शीलाङ्क लिखते हैं ''चार चूलिकात्मक श्रुतस्कन्ध के प्रक्षेप से उसका परिमाण बहु और पाँचवीं चूला निशीथ के प्रक्षेप से उसका परिमाण बहुतर हुआ[2]।'' नियुक्तिकार अन्यत्र लिखते हैं ''शस्त्र-परिज्ञा आदि नौ अध्ययन है उतना ही आचार (अङ्ग) है। शेष आचाराग्र है[3]। जो बातें

१—आ० नि० ११

णवबम्भचेरमइओ अट्ठारसपयसहस्सिओ वेओ।
हवइ य सपञ्चचूलो बहुबहुतरओ पयग्गेण॥

२—आ० नि० ११ की टीका

तत्र अध्ययनतो नवब्रह्मचर्याभिधानाध्ययनात्मकोऽयं पदतोऽष्टादशसहस्रात्मको वेद' आचार इति सपञ्चचूडश्च भवति चतुश्चूलिकात्मक द्वितीय श्रुतस्कन्धप्रक्षेपाद्बहु, निशीथाख्य पञ्चमचूलिकाप्रक्षेपाद्बहुतर पदाग्रेण—पदपरिमाणेन भवति

३— आ० नि० ३१ ३२

सत्थपरिण्णा[1] लोगविजओ[2] सीओसणिज्ज[3] सम्मत्त[4]।
तह लोगसारनाम[5] धुय[6] तह महापरिण्णा[7] य॥
अट्ठमए य विमोक्खो[8] उवहाणसुय च नवमगं भणियं।
इच्चेसो आयारो आयारग्गाणि सेसाणि॥

आचार में बहुती छूट गयी अथवा जिनका विस्तार करना जरूरी था उनका समावेश इस 'अग्र' भाग में है, अतः यह आचाराग्र है[1]। नियुक्तिकार ने इस विषय पर पुनः प्रकाश डालते हुए लिखा है "आचार (अङ्ग) प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ अध्ययन जितना ही है। दूसरे श्रुतस्कन्ध के अध्ययन तो शिष्यों के हित के लिए, अर्थ का अधिक विस्तार करने के लिए श्रुत वृद्ध स्थविरों ने पहले श्रुतस्कन्ध आचार के अध्ययनों से प्रविभक्त किये हैं[2]।" टीकाकार ने यह दिखाया है कि प्रथम श्रुतस्कन्ध के नौ अध्ययन के किस भाग या वाक्य पर से दूसरे श्रुतस्कन्ध के अध्ययन का विस्तार किया गया है। किस चूला का विषय

१—आ० टीका पत्र २८९
उपकाराग्र तु यत्पूर्वोक्तस्य विस्तरतोऽनुक्तस्य च प्रतिपादनादुपकारे वर्तते तद्—यथा दशवैकालिकस्य चूडे, अयमेव वा श्रुतस्कन्ध आचारस्य।
२—आ० नि० २८७।
थेरेहिऽणुग्गहट्ठा सीसहिय होउ पागडत्थं च।
आयाराओ अत्थो आयारंगेसु पविभत्तो॥
टीका—स्थविरैः श्रुतवृद्धै

यहाँ से लिया गया है इसका विस्तार नियुक्ति में भी है[1]। आचाराङ्ग चूर्णि और टीका में प्रथम श्रुतस्कंध के अन्तिम वाक्य को अन्तिम मङ्गल माना है[2]। इससे भी यह सिद्ध होता है कि मूल आचारांग नौ अध्ययन में परिमित रहा।

जेकोबी ने लिखा है "प्रथम श्रुतस्कंध आचारांग का प्राचीनतम भाग है सम्भवतः यही मूल प्राचीन आचारांग सूत्र है जिसके साथ अन्य कृतियाँ बाद में जोड़ी गई[3]। विन्टरनिज लिखते

१—आ० नि० २८८ २९१

२—आ० टी० पत्र १ प्रत्यूहोपशमनाय मङ्गलमभिधेयं तच्चादिमध्यावसान भेदास्त्रिधा, तत्रादिमङ्गलं 'सुयं मे आउसतेण भगवया एवमक्खायं', मध्यमङ्गलं लोकसाराध्ययन पञ्चमोद्देशकसूत्रं 'से जहा केवि सारक्खमाणे', अवसानमङ्गलं नवमाध्ययनेऽवमानसूत्रम् 'अभिनिव्वुडे अमाई आवकहाए भगवं समियासी।'

3 S B E (Vol XXII, Introduction p XLVII) The first book, then, is the oldest part of the Akaranga Sutra, it is probably the old Akaranga Sutra itself to which other treatises have been added

है "आचारांग का द्वितीय श्रुतस्कंध बहुत बाद का है। यह केवल इतने मात्र से जाना जा सकता है कि दूसरे श्रुतस्कंध के अध्ययनों को 'चूला' कहा गया है। चूला अर्थात् परिशिष्ट'।'

द्वितीय श्रुतस्कंध प्रथम श्रुतस्कंध की अपेक्षा बाद का है परन्तु फिर भी यह बहुत प्राचीन है और निर्युक्तिकार भद्रबाहु के समय में यह आचारांग में समाविष्ट था इसमें कोई सन्देह नहीं।

२ प्रतिपाद्य विषय

प्रथम चूला में ७ अध्ययन हैं—जिनमें क्रमशः पिण्डैषणा, शय्या-वसति, ईर्या विहार, भाषा, वस्त्रैषणा पात्रैषणा, अवग्रह प्रतिमा के नियम हैं। इस चूला का नाम नहीं मिलता। दूसरी चूला में भी ७ अध्ययन हैं। जिनमें क्रमशः स्थान निषीधिका उच्चार प्रस्रवण, शब्द, रूप परक्रिया, अन्योन्यक्रिया विषयक नियम हैं। इस चूला का नाम सत्तिक्कया है। तीसरी चूला में एक ही अध्ययन है। इसमें भगवान महावीर का जीवन चरित्र तथा पाँच महाव्रत और उनकी २५ भावनाओं का हृदयग्राही वर्णन है। यह

1 A History of Indian literature (Vol II, p 437) Section II of the Ayaranga is a much later work, as can be seen by the mere fact of the sub divisions being described as Culas, i e appendices

साम्य निहित है। प्रथम श्रुतस्कंध में मुनियों के व्रत नियमों का उल्लेख नहीं है पर वहाँ व्यापक धर्म भावना और जीवन-व्यापी समता संयम के सूत्र हैं। इस अध्ययन में गम्भीर तत्त्वचिंतन एवं साधक मुनि की साधना के मौलिक सूत्र हैं।

प्रथम श्रुतस्कन्ध के अध्ययनों का विषय संक्षेप में इस प्रकार है

१—शस्त्रपरिज्ञा इसमें जीवों के प्रति संयम का उपदेश है। जैन धर्म में छः प्रकार के जीव माने गये हैं। इन जीवों की हिंसा के परिहार का उपदेश इस अध्ययन में है।

२—लोकविजय इस अध्ययन में भावलोक की विजय की बात आई है। जिनसे लोक—कर्म—का बन्ध होता है उन कषायादि पर विजय का उपदेश इस अध्ययन में है।

३—शीतोष्णीय इसमें सुख-दुःख में तितिक्षा भाव रखने का उपदेश है।

४—सम्यक्त्व इसमें सम्यग् दृढ़ श्रद्धा रखने का उपदेश है।

५—लोकसार इसमें लोक में सार क्या है इसका वर्णन है। इस अध्ययन का नाम आवन्ति[1] भी मिलता है।

६—धुत इसमें निर्ममता का उपदेश है।

१—समवायाङ्ग सू० ९

७—महापरिज्ञा[1] इसमें मोहजन्य परिषह उपसर्ग को सहन करने का उपदेश है। यह अध्ययन विच्छिन्न है। इसके विषय का प्रतिपादन निर्युक्तिकार ने इस वाक्य से किया है— मोह समुत्था परीसहुवसग्गा।

८—विमोक्ष[2] इसमें निर्वाण—अन्तक्रिया—की विधि है।

९—उपधानश्रुत इसमें भगवान महावीर के दीक्षा के बाद के बारह वर्ष व्यापी दीर्घ तपस्वी जीवन का वर्णन है।

उपरोक्त नौ अध्ययनों के विषय की चर्चा करने वाली निर्युक्ति की गाथाएँ इस प्रकार हैं—

जियसंजमो[1] य लोगो जह बज्झइ जह य तं पजहियव्वं[2]।
सुहदुक्खतितिक्खाविय[3] सम्मत्तं[4] लोगसारो[5] य॥ ३३॥
निस्संगया[6] य छट्ठे मोहसमुत्था परीसहुवसग्गा[7]।
निज्जाणं[8] अट्ठमए नवमे य जिणेण एवं ति[9]॥ ३४॥

४ उपनिषद् और आचाराङ्ग

प्रो० दलसुख मालवणिया लिखते हैं

'वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में स्तुतियों की भरमार है पर आध्यात्मिक चिन्तन बहुत कम मिलता है। उपनिषदों में आध्यात्मिक

१—इसके क्रम के विषय में देखिए भूमिका पृ० ४ पा० टी० ३

२—इसका नाम 'विमोह' (विमोहायण) भी मिलता है। सम० सू० ९

चिन्तन उपलब्ध अवश्य होता है परन्तु उसमें यह नहीं बताया गया है कि आत्म चिन्तन-मनन एवं साधना का मार्ग क्या है ? साधना के पथिक की दैनिक जीवनचर्या कैसी होनी चाहिए या उसे कहाँ साधक कैसे चले, कैसे बैठे, कैसे खाए, कैसे निद्रा तथा किस प्रकार तन मन और वचन की प्रवृत्ति को आध्यात्मिक साधना की ओर मोड़े, इसका कोई समाधान नहीं बताया गया है।

"इस तरह उपनिषद् में ब्रह्मचर्या का है पर ब्रह्मचर्य का पता नहीं लगता। चिन्तन मनन करने का उपदेश तो दिया गया है पर उसके लिए साधक के जीवन में किस तरह की योग्यता, गुण निष्पन्न होनी चाहिए तथा किसका संयम होना चाहिए, उसका स्पष्ट विधि विधान प्राचीन उपनिषदों में परिलक्षित नहीं होता। न संयम का विधि विधान है, न त्याग-तप का ही।

'यदि आध्यात्मिक चिन्तन-मनन एवं संयमी जीवन का मार्ग स्वीकार करना हो तो हमारे समक्ष श्रमण परम्परा का यह प्राचीन सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ आचाराङ्ग सूत्र है'।'

---

१ जैन-साहित्य का इतिहास आचाराङ्ग सूत्र ('लाण' वर्ग ६ उद्दे० १ पृ० ८)

७—महापरिना[1] इसमें मोहजय परिषह-उप
करने का उपदेश है। यह अध्ययन विच्छिन्न है।
का प्रतिपादन निर्युक्तिकार ने इस वाक्य से किया है—'
परीसहुवसग्गा।

८—विमोक्ष[2] इसमें निर्वाण—अन्तक्रिया—की

९—उपधानश्रुत इसमें भगवान् महावीर के दी
के बारह वर्ष व्यापी दीर्घ तपस्वी जीवन का वर्णन है।

उपरोक्त नौ अध्ययनों के विषय की चर्चा करने वाली
की गाथाएँ इस प्रकार हैं—

जियसंजमो[1] अ लोगो जह बज्झइ जह य त पजहियव्व[2]।
सुहदुक्खतितिक्खाविय[3] समत्त[4] लोगसारो[5] य॥
निस्संगया[6] य छट्ठे मोहसमुत्था परीसहुवसग्गा[7]।
निज्जाण[8] अट्ठमए नवमे य जिणेण एवति[9]॥

४ उपनिषद् और आचाराङ्ग

प्रो० दलसुख मालवणिया लिखते हैं

'वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में स्तुतियों की भरमार है, पर
त्मिक चिन्तन बहुत कम मिलता है। उपनिषदों में आध्या

१—इसके क्रम के विषय में देखिए भूमिका पृ० ४ पा० टी
२—इसका नाम 'विमोह' (विमोहायण) भी मिलता
सम० सू० ९

चिन्तन उपलब्ध अवश्य होता है परन्तु इसमें यह नहीं बताया गया है कि साध्य चिन्तन-मनन एवं साधना का मार्ग क्या है ? अध्यात्म के पथिक की दैनिक जीवनचर्या कैसी होनी चाहिए या उसे कैसे साधक कैसे चले, कैसे बैठे, कैसे खावे, कैसे निद्रा ले, किस प्रकार तन, मन और वचन की प्रवृत्ति को आध्यात्मिक साधना की ओर मोड़े, इसका कोई राजमार्ग नहीं बताया गया है।

'इस तरह उपनिषदों में ब्रह्मवार्ता तो है, पर ब्रह्मचर्य का पता नहीं लगता। चिन्तन मनन करने का उल्लेख तो किया गया है, पर उसके लिए साधक के जीवन में किस तरह की योग्यता, गुण निष्पन्नता होनी चाहिए तथा कितना संयम होना चाहिए, उसका स्पष्ट विधि विधान प्राचीन उपनिषदों में परिलक्षित नहीं होता। न संयम का विधि विधान है न त्याग-तप का ही।

'यदि आध्यात्मिक चिन्तन-मनन एवं संयमी जीवन का साधना स्वरूप जानना हो तो हमारे समक्ष श्रमण परम्परा का यह प्राचीन सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ आचारांग सूत्र है[1]।'

---

१ जैन-साहित्य का इतिहास आचाराङ्ग सूत्र ('श्रमण' वर्ष ६ अङ्क १ पृ० ८)

७ शैली और रचना समय

आचारांग की शैली और उसके रचना समय के बारे में ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करते हुए डॉ० टी० एन० दव एम० ए बी० टी० (बम्बई), पीएच० डी० (लदन) लिखते हैं —

"दूसरा सारा स्कन्ध (अन्तिम काव्यमय अध्ययन बाद देने पर) मुख्यत गद्य में लिखा हुआ है और वह गद्य जैन बौद्ध शैली का अर्थात् आवर्तन पुनरावर्तन वाला तथा पर्याय प्रपर्याय के बाहुल्य वाला है। जबकि प्रथम स्कन्ध की शैली सतन्त्र जुदी है। यह शैली केवल गद्य की (अ० ६) और गद्य पद्य के मिश्रण की है। बड़े गद्य के टुकड़े के बाद बड़ा पद्य का टुकड़ा आता रहता है (अ० १ उ० ३ अ० ८ वगैरह)। इतना ही नहीं पर एक एक, दो-दो गद्य खण्ड के बाद गद-रा पद्य आते हैं (अ० १ उ० २, अ० ८ उ० ३ वगैरह)। कभी तो गद्य के बीच में पद्य का एक दो पाद इस प्रकार मिला रहता है कि उसको अलग करना कठिन हो जाता है। (अ० ४ उ० ३ सू० २५८ अ० १ उ० ४ सूत्र २१४ २१६)। यह मिश्र शैली बहुत पुरानी है। एतरेय ब्राह्मण[1], उपनिषद्[2],

१—शुन शेपकी कथा का उदाहरण सबसे अधिक विदित है।
२—छान्दोग्य और बृहदारण्यक मे यह स्थिति स्थान-स्थान पर है।

और कृष्ण यजुर्वेद[3] में यह शैली पूर्णता को पहुँची हुई दिखती है। जब कि गद्यमयी शैली अपेक्षाकृत आधुनिक है। दूसरे, जो पद्य इसके गद्यांशों में शामिल होते हैं वे वेदकालीन और कुछ दूसरे पुराने त्रिष्टुभ्[4], अनुष्टुभ्[5] जैसे छन्दों की कड़ियाँ हैं। यह भी शैली की प्राचीनता की सूचना करता है[6]।

"भाषा की दृष्टि से तमाम पर समस्त जैन आगम में श्री आचारांग की भाषा प्राचीनतम है।

"श्रीगीता का पद्यात्मक उपनिषद् के काल में रचा जाना है, और श्री आचारांग सूत्र का श्री गीता के साथ इतना अधिक साम्य रखने पर, तथा शैली से उसका साम्य ब्राह्मण उपनिषद् के साथ देखते हुए श्री आचारांग सूत्र को जैन ग्रन्थों में सबसे पुराना मानने में और उसे विक्रम से विक्रम लगभग ई० पू० तीसरे शतक में

३—लगभग सारा कृष्णयजुर्वेद इस शैली से है।

४, ५—अ० २ उ० ४ सूत्र १०८, ११२ के टुकड़े ऐसे ही हैं।

६—प्रो० शूब्रिंग ने इसे अंशों का उद्धार करने तथा उनके मूल की शोध करने का सूत्र प्रयत्न किया है और उसमें उनको बहुत ही सफलता मिली है। देखिए Worte Mahaviras का उपोद्घात।

रचना में मति नहीं मालूम देती। यह उसम सदी, अथ सदी पूव का भी हो सकता है[७]।

इस पुस्तक म आचारांग के प्रथम श्रुतस्कध के सूत्तों का संग्रह है। साथ म उनका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। हिंदी अनुवाद में गूढ ग्रंथ का वहीं पर पर्यायवाची शब्द व वाक्य द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न रहा है। वाक्यों के टुकडे और उनका सम्बन्ध अपन चिन्तन के अनुसार निधारित किया है। इस दृष्टि स अन्य अनुवाद और इस अनुवाद मे मौलिक अन्तर भी पाठकों को दिखाई देगा। आचारांग गूढ गंभीर सूत्र है। उस हम अहिंसा और आचार की महिमा वह सकते हैं। अहिंसा का अत्यन्त गंभीर चिन्तन और उन्माद इस ग्रन्थ में है। मनुष्य, पशु प क्षी, कीडे मकाडे पृथ्वी, अप, वायु तेज और वनस्पति काय सब जीवों का एक तुला पर तोल कर सबके प्रति समान अहिंसा भावना रखने का उपदेश इस ग्रंथ में स्थान स्थान पर आया है और इसके प्रथम अध्ययन के ७ उद्देशक तो विशेष कर इसी विषय के विवेचन के लिए प्रयुक्त हैं। यह ग्रंथ सूक्तों का भण्डार है और

७—अचाराङ्ग सूत्र (सत बाल) गुजराती निर्देशन पृ० ४३ ४४ तथा ४६ का अनुवाद—

इसके छोटे-छोटे वाक्य महान् जीवन-सूत्र से हैं। पाठक उन्हें पढ़ कर स्वयं इस बात का अनुभव कर सकेंगे।

डॉ० शुब्रिंग ने आचारांग के प्रथम श्रुतस्कंध का जर्मन भाषा में अनुवाद करते हुए उसका नाम Worte Mahaviras 'महावीर के शब्द' रखा है। उनका मत है कि इस श्रुतस्कंध में महावीर की मूल वाणी सुरक्षित है। इस विषय में श्री गोपालदास जीवाभाई पटेल लिखते हैं —

"आचारांग के सम्बन्ध में तो अवश्य कहा जा सकता है कि यदि किसी भी सूत्र में महावीर के अपने शब्द सङ्कलित हुए हों ऐसा कह सकते हैं तो वह आचारांग है"[1]। इस तरह इस सूक्ति संग्रह से पाठकों को महावीर के अपने अर्थगौरवगंभीर वाक्यों का दर्शन हो सकेगा।

अन्त में मैं उन सब विद्वानों और प्रकाशकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी रचना व प्रकाशनों का अवलोकन इस पुस्तक के सम्पादन में सहायक हुआ है। भाई [illegible]न्द्र कुमार ने पाठ मिलाने और प्रूफ संशोधन के कार्य में जो सहायता मुझे दी है उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

१—महावीरस्वामी जो आचारधर्म (आवृत्ति पहेली) के गुजराती उपोद्घात पृ० १४ का अनुवाद।

पुस्तक सूची

इस पुस्तक के सम्पादन में भिन्न-भिन्न पुस्तकों का अवलोकन किया गया है, उनकी सूची इस प्रकार है.

१ श्री आचारांग सूत्रम् (मूल, निर्युक्ति, टीका। प्रकाशक सिद्ध चक्र साहित्य प्रचारक समिति, बम्बई)

२ आचारांग सूत्र (मूल पाठ डाक्टर वाल्टर शूब्रिंग द्वारा संशोधित)

२ आचारांग चूर्णि

३ जैन सूत्र भाग १ (अंग्रेजी अनुवाद। अनु० हर्मन जेकोबी Sacred Books of the East Vol XXII)

४ आचारांग सूत्र (प्रथम श्रुतस्कंध का गुजराती अनुवाद अनुवादक श्री सन्तबाल)

५ महावीरस्वामीनो आचार धर्म (गुजराती छायानुवाद सम्पादक गोपालदास जीवाभाई पटेल)

६ आचारांग सूत्रम् (प्रथम श्रुतस्कंध का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक मुनि श्री सौभाग्यमल जी)

७ आचारांग सूत्र (प्रथम श्रुतस्कंध का बंगानुवाद अनु० श्री हीरा कुमारी बोथरा)

८ श्री आचारांग सूत्रम् (प्रथम श्रुतस्कंध का हिन्दी अनुवाद। अनु० पं० घवरचन्द्र बांठिया)
९ जैन साहित्य का इतिहास आचारांग सूत्र (प्रो० दलसुख मालवणिया 'श्रमण' वर्ष ८ अं० १२ से)
१० आर्हत आगमानुं अवलोकन याने तत्वरसिक चन्द्रिका (प्रणेता प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया एम० ए०)
११ आगमोनुं दिग्दर्शन (वही)
१२ A History of the Canonical Literature of the Jains वही)
१३ A History of Indian Literature VOL II (by Maurice Winternitz, ph D)
१४ Some Jaina Canonical Sutras (by Bimala Charan Law, M A, B L, ph D, D Litt)
१५ समवायांग सूत्र
१६ नन्दी सूत्र

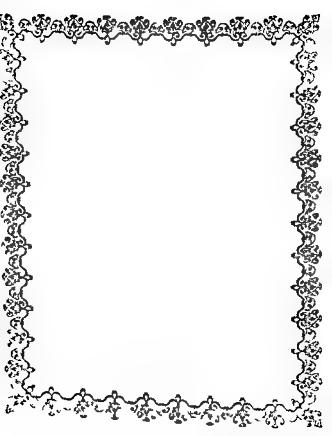
विषय-क्रम

१ शस्त्र-परिज्ञा

(१) आत्मवादी कौन ?
(२) कर्म-समारम्भ ५
(३) पृथ्वीकायिक हिंसा ९
(४) अप्कायिक हिंसा १३
(५) अग्निकायिक हिंसा १९
(६) वायुकायिक हिंसा २५
(७) वनस्पतिकायिक हिंसा ३१
(८) त्रसकायिक हिंसा ३७
(९) शस्त्र-परिज्ञा ४३
(१०) एकेन्द्रियों की वेदना ४९
(११) महापथ ६१

२ लोक विजय ६७
३ शीतोष्णीय ७७
४ सम्यक्त्व १३९
५ लोकसार १७३
६ धूत २०३
७ विमोक्ष २४५

आचाराङ्ग के सूक्त



सुय मे आउस !
तेण भगवया एवमक्खाय :
मैं ने सुना है, आयुष्मन् !
उन भगवान् ने ऐसा कहा

१

आयावादी

१—इहमेगेसिं णो सण्णा भवइ तंजहा—
पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
दाहिणाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
उड्ढाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि,
अहो दिसाओ वा आगओ अहमंसि,
अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा
आगओ अहमंसि।

२—एवमेगेसिं णो णायं भवइ—अत्थि
मे आया उववाइए, णत्थि मे आया उववाइए,

१

आत्मवादी कौन ?

१—संसार में कई लोगों को—'मैं पूर्व दिशा से आया हूं, दक्षिण दिशा से आया हूं, पश्चिम दिशा से आया हूं, उत्तर दिशा से आया हूं, ऊर्ध्व दिशा से आया हूं, अधो दिशा से आया हूं या अन्य किसी दिशा अनुदिशा से आया हूं'—यह संज्ञा नहीं होती।

२—कइयों को—"मेरी आत्मा औपपातिक—पुनर्जन्म करने वाली—है अथवा नहीं है मैं कौन था

के अह आसी ? के वा इओ चुए इह पेचा भविस्सामि ?

३—से ज पुण जाणेज्जा सह सम्मइयाए परवागरणेण, अण्णेसिं अंतिए वा सोचा तंजहा—पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि, जाव अण्णयरीओ दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमसि।

४—एवमेगेसिं ज णाय भवइ—अत्थि मे आया उववाइए, जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ वा अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ अणुदिसाओ सोऽहं।

५—से आयावादी लोयावादी कम्मावादी किरियावादी। (श्रु० १ अ० १ उ० १)

एवं यहाँ से च्यवकर परलोक में मैं क्या होऊँगा ? — यह ज्ञान नहीं होता ।

३—स्वमति से दूसरे के कहने से अथवा दूसरे से सुनकर मनुष्य फिर कभी—"मैं पूर्व आदि किसी दिशा से आया हूँ, अथवा अन्य दिशा अनुदिशा से आया हूँ"—यह जानता है ।

४—किसी किसी को—"मेरी आत्मा औपपातिक है—पुनर्जन्म करनेवाली है तथा "जो इन दिशाओं अनु दिशाओं से आता है तथा सब दिशाओं अनुदिशाओं में भ्रमण करता है वह मैं ही हूँ"—यह ज्ञान होता है ।

५—जिसे ऐसा ज्ञान होता है वही पुरुष आत्मवादी लोकवादी कर्मवादी और क्रियावादी होता है ।

२

कम्मसमारंभा

१—अकरिस्सं चऽहं, कारवेसुं चऽहं,
० ,० । ० ,० ।
० ,० । करओ आवि
समणुन्ने भविस्सामि।

एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति।

२—अपरिण्णायकम्मा खलु अयं पुरिसे जो इमाओ दिसाओ अणुदिसाओ अणुसंचरइ, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ साहेति। अणेगरूवाओ जोणीओ संधेइ, विरूवरूवे फासे पडिसंवेदेइ।

२

कर्म-समारम्भ

१—मैंने किया, मैंने करवाया, करते हुए दूसरे का अनुमोदन किया; मैं करता हूँ, करवाता हूँ, करते हुए का अनुमोदन करता हूँ; मैं करूँगा, मैं करवाऊँगा, करते हुए का अनुमोदन करूँगा—लोक में सर्व कर्मसमारम्भ—क्रिया के प्रकार—इतने ही हैं। ये परिज्ञेय हैं—इन्हें जानना चाहिए।

२—निश्चय [redacted] अपरिज्ञातकर्मा पुरुष ही है जो इन दिशाओं अनुदिशाओं में जाता है, सर्व दिशाओं अनुदिशाओं को प्राप्त करता है, अनेक प्रकार की योनियों का उपार्जन करता है तथा विविध प्रकार के स्पर्शों—दुःखों का प्रतिसंवेदन करता है।

३—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडि-घायहेउं।

एयावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमा-रम्भा परिजाणियव्वा भवन्ति।

४—जस्सेते लोगंसि कम्मसमारम्भा परि-ण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि।

(श्रु० १ अ० १ उ० १)

३—अपने [redacted] जीवन के लिए, परिवन्दन—यश के लिए, मान के लिए, पूजा—सत्कार के लिए, जन्म और मृत्यु से छुटकारा पाने के लिए तथा दुःख के प्रतिघात के लिए (मनुष्य उपरोक्त रूप से क्रियाओं में प्रवृत्त होता है।)

लोक में सब कर्मसमारम्भ—क्रिया की मात्राएँ—इतनी ही हैं। इन्हें जानना चाहिए।

४—लोक में कर्मसमारम्भ के ये प्रकार जिसे ज्ञात होते हैं वही परिज्ञातकर्मा मुनि कहलाता है। ऐसा मैं कहता हूं।

३

पुढविकम्मसमारम्भ

१—अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभेमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

२—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणणपूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुक्खपडिघायहेउं, से सयमेव पुढविसत्थं समारम्भइ, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारम्भावेइ, अण्णे वा पुढविसत्थं समारम्भते समणुजाणइ।

तं से अहियाए, तं से अबोहिए

३

पृथ्वीकायिक हिंसा

१—हम अनगार हैं ऐसा कहते हुए भी कोई [redacted] विविध प्रकार के शस्त्रों से पृथ्वीविषयक कर्मसमारंभ करते हैं तथा पृथ्वीशस्त्र का समारंभ करते हुये पृथ्वी के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य इस जीवन के लिए, प्रशंसा सम्मान और पूजा के लिए, जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु, स्वयं पृथ्वीकायशस्त्र का समारम्भ करता है दूसरों से शस्त्र समारम्भ करवाता है और शस्त्र समारम्भ करनेवालों को अच्छा समझता है।

यह पृथ्वीकाय की हिंसा करनेवाले के लिए अहित कर होती है यह उसके लिए अबोधि का कारण होती है।

एस खलु गथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए

३—इच्चत्थं गढ़िए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारम्भेण पुढविसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

४—एत्थ सत्थं समारम्भमाणस्स इच्चेते आरम्भा अपरिण्णाया भवन्ति,

एत्थ सत्थं असमारम्भमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाता भवन्ति।

५—तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं पुढविसत्थं समारम्भेज्जा, नेवण्णेहिं पुढविसत्थं समा-

निश्चय ही यह पृथ्वीकाय का समारम्भ ग्रन्थि का कारण है मोह का कारण है मृत्यु का कारण है और यही निश्चय ही नरक का हेतु है।

३—प्रशंसा-मान-पूजा आदि भावनाओं में मूढ़ मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा पृथ्वीकायविषयक कर्म समारम्भ करता है तथा पृथ्वी शस्त्र का समारम्भ करता हुआ वह पृथ्वी जीवों की हिंसा के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—पृथ्वीकाय के प्रति शस्त्र समारम्भ करनेवालों को ये सब आरंभ अज्ञात होते हैं।

पृथ्वीकाय के प्रति शस्त्र समारंभ न करनेवालों को इन सब आरंभों का ज्ञान होता है।

५—यह जानकर मेधावी न स्वयं पृथ्वी शस्त्रका समारम्भ करे न दूसरों से इस शस्त्र का समारम्भ

म्भावेज्जा, नेवण्णे पुढविसत्थं समारम्भन्ते समणुजाणेज्जा।

६—जस्सेते पुढविकम्मसमारम्भा परिण्णाया भवन्ति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि।

(श्रु० १ अ० १ उ० १)

करवाये और न इस शस्त्र का समारंभ करनेवालों को अच्छा समझे।

६—जिसको पृथ्वी-जीव विषयक कर्म समारंभों का ज्ञान होता है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है—ऐसा मैं कहता हूं।

४

उदयसकम्मसमारम्भ

१—अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारम्भेण, उदयसत्थं समारम्भमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

२—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुक्खपडिघायहेउ, से सयमेव उदयसत्थं समारम्भति, अण्णेहिं वा उदयसत्थं समारम्भावेति, अण्णे वा उदयसत्थं समारम्भन्ते समणुजाणइ,

त से अहियाए, त से अबोहिए

४

अप्कायिक हिंसा

१ हम अनगार हैं ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से अप् (पानी) विषयक कर्म समारम्भ करते हैं तथा अप्शस्त्र का समारम्भ करते हुए, अप् के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य इस जीवन में, प्रशंसा सन्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के लिए स्वयं अप्काय शस्त्र का समारंभ करता है दूसरों से शस्त्र समारम्भ करवाता है और शस्त्र समारंभ करनेवालों को अच्छा समझता है।

यह अप्काय की हिंसा करनेवाले के लिए, अहितकर होती है यह उसके लिए अबोधि का कारण होती है।

एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए।

३—इच्चत्थं गढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारम्भेण, उदयसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ

४—एत्थ सत्थं समारम्भमाणस्स इच्चेते आरम्भा अपरिण्णाया भवंति,

एत्थ सत्थं असमारम्भमाणस्स इच्चेते आरम्भा परिण्णाता भवंति।

५—तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं उदयसत्थं समारम्भेजा णेवण्णेहिं उदयसत्थं समा-

निश्चय ही यह अपकाय का समारंभ बंधन का कारण है मोह का कारण है मृत्यु का कारण है और निश्चय ही यह नरक का हेतु है।

३—प्रशंसा मान-पूजा आदि भावनाओं में मूढ मनुष्य विविध शस्त्रों द्वारा अपकाय विषयक कर्म-समारंभ करता है तथा अप् शस्त्र का समारंभ करता हुआ, वह अप् जीवों की हिंसा के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—अपकाय में शस्त्र समारम्भ करनेवालों को ये सब आरंभ अज्ञात होते हैं।

अपकाय में शस्त्र समारंभ न करनेवालों को इन सब आरम्भों का ज्ञान होता है।

५—यह जानकर मेधावी न स्वयं अप्जीवकाय के शस्त्रका समारम्भ करे न दूसरों से इन शस्त्रोंका समारंभ

रभावेज्जा, उदय सत्थ समारभंतेऽवि अण्णे ण समणुजाणेज्जा।

६—जस्सेते उदयसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि। १।१ ३

कराये और न इन शस्त्रों का समारंभ करने वाले को अच्छा समझे।

६—जिसको अप्जीव विषयक कर्म समारम्भों का ज्ञान होता है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है—ऐसा मैं कहता हूं।

६

अगणिकम्मसमारम्भ

१—अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणिकम्मसमारम्भेण अगणिसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

२—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणणपूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुक्खपडिघायहेउं से सयमेव अगणिसत्थं समारभंति, अण्णेहिं वा अगणिसत्थं समारभावेइ, अण्णे वा अगणिसत्थं समारभमाणे समणुजाणइ।

तं से अहियाए, तं से अबोहिए।

५
अग्निकायिक हिंसा

१—हम अनगार हैं ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से अग्नि विषयक कर्म-समारम्भ करते हैं तथा अग्नि शस्त्र का समारम्भ करते हुए अग्नि के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य इस जीवन में प्रशंसा सन्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु स्वयं अग्निकाय शस्त्र का समारम्भ करता है दूसरों से शस्त्र-समारम्भ करवाता है और शस्त्र समारम्भ करने वाले को अच्छा समझता है।

यह अग्निकाय की हिंसा करने वाले के लिए, अहित कर होती है यह उसके लिए अबोधि का कारण होती है।

एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए।

३—इच्चत्थं गढ़िए लोए जमिणं विरूव-रूवेहिं सत्थेहिं अगणिकम्मसमारंभेण अगणि-सत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ।

४—एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति,

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाता भवंति।

५—तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं अगणि-सत्थं समारम्भेज्जा णवण्णेहिं अगणिसत्थं

निश्चय ही यह [illegible] को अच्छा कारण है मोह का कारण है [illegible] निश्चय ही नरक का हेतु है।

३—प्रशंसा-मान-पूजा [illegible] समारम्भों का इन विविध शस्त्रों द्वारा [illegible] है—ऐसा मैं करता है तथा अग्नि शस्त्र का [illegible] अग्नि जीवों की हिंसा के [illegible] प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—अग्निकायमें शस्त्र [illegible] सब आरम्भ अज्ञात होते हैं।

अग्निकाय में शस्त्र [illegible] सब आरम्भों का ज्ञान होता है।

५—यह जानकर [illegible] समारम्भ करे न दूसरों से [illegible]

समारम्भावेज्जा, अगणिसत्थं समारभमाणे अण्णे न समणुजाणेज्जा,

६—जस्सेते अगणिकम्मसमारम्भा परिण्णाया भवन्ति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि ११ ४

[illegible] अथवा [illegible]।

[illegible] था [illegible] है [illegible]।

६

वाउकम्म समारम्भ

१—अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेण वाउकायसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसइ

२—इमस्स चेव जीवियस्स, परिवंदण-माणणपूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुक्ख-पडिघायहेउ, से सयमेव वाउसत्थं समारम्भति, अण्णेहिं वाउसत्थं समारम्भावेइ, अण्णे वा वाउकायसत्थं समारम्भन्ते समणुजाणइ।

त से अहियाए, त से अबोहिए

६

वायुकायिक हिंसा

१—हम अनगार हैं ऐसा कहते हुए भी जो इन विविध प्रकार के शस्त्रों से वायु विषयक कर्म समारंभ करते हैं तथा वायु शस्त्र का समारंभ करते हुए, वायु के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य इस जीवन में, प्रशंसा, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु वायुकाय शस्त्र का समारम्भ करता है दूसरों से शस्त्र-समारम्भ करवाता है और शस्त्र-समारम्भ करनेवालों को अच्छा समझता है।

यह वायुकाय की हिंसा करनेवाले के लिए, अहितकर होती है यह उसके लिए अबोधि का कारण होती है।

सत्थ समारम्भावेज्जा, णेवऽण्णे वाउसत्य समारभते समणुजाणेज्जा,

६—जस्सेते वाउकायसत्यसमारंभा परिण्णाया भवन्ति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि।

(अ० १ अ० १ उ० ७)

समारम्भ करावे और न शस्त्र का समारम्भ करने वाले को अच्छा समझे।

६—जिसको वायुजीव विषयक कर्म समारम्भों का ज्ञान होता है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है—ऐसा मैं कहता हूँ।

७

वणस्सइकम्मसमारम्भ

१—अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा, जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइकम्म-समारंभेण वणस्सइसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

२—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणणपूयणाए, जाइमरणमोयणाए, दुक्खपडि-घायहेउं, से सयमेव वणस्सइसत्थं समारंभइ अण्णेहिं वा वणस्सइसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वा वणस्सइसत्थं समारम्भमाणे समणुजाणइ।

त से अहियाए, त से अबोहीए।

७

वनस्पतिकायिक हिंसा

१—हम अनगार हैं ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से वनस्पति विषयक कर्म समारम्भ करते हैं तथा वनस्पति शस्त्र का समारम्भ करते हुए, वनस्पति के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य इस जीवन में प्रशंसा सम्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु, स्वयं वनस्पतिकाय शस्त्र का समारम्भ करता है दूसरों से शस्त्र समारम्भ करवाता है और शस्त्र समारम्भ करनेवालों को अच्छा समझता है।

एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए।

३—इच्चत्थ गढ्ढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइकम्मसमारभेणं, वणस्सइसत्थं समारभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

४—एत्थ सत्थं समारभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाता भवन्ति।

एत्थ सत्थं असमारभमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवंति।

यह वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाले के लिए अहित कर होती है यह उसके लिए अबोधि का कारण होती है।

निश्चय ही यह वनस्पतिकाय समारम्भ बन्धन का कारण है मोह का कारण है मृत्यु का कारण है और यही निश्चय ही नरक का हेतु है।

३—प्रशंसा, मान पूजा आदि भावनाओं में गृद्ध मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा वनस्पतिकाय विषयक कर्म-समारम्भ करता है तथा वनस्पति शस्त्र का समारम्भ करता हुआ यह वनस्पतिकाय जीवों की हिंसा के साथ साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—वनस्पतिकाय के प्रति शस्त्र-समारम्भ करनेवालों को ये सब आरम्भ अज्ञात होते हैं।

वनस्पतिकाय के प्रति शस्त्र समारम्भ न करनेवालों को इन सब आरम्भों का ज्ञान होता है।

५—स परिण्णाय मेहावी णेव सयं वणस्सइ सत्थ समारभेज्जा णेवण्णेहिं वणस्सइसत्थं समारभावेज्जा, णेवण्णे वणस्सइसत्थ समारभंते समणुजाणेज्जा,

६—जस्सेते वणस्सतिसत्थसमारंभा परिण्णाया भवति से मुणी परिण्णायकम्मे —त्ति बेमि।

(श्रु० १ अ० १ उ० ५)

५—इस प्रकार [illegible] न स्वयं [illegible] शास्त्र का [illegible] करे, न दूसरों से इस शास्त्र का स्वाध्याय कराये और न इस शास्त्र का स्वाध्याय करनेवाले की [illegible] समझे।

६—जिसको [illegible] और [illegible] का ज्ञान होता है वही परिव्राजक मुनि है—ऐसा [illegible] कहता है।

८

तसकायकम्मसमारम्भ

१—अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेण तसकायसत्थं समारंभमाणा अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति

२—इमस्स चेव जीवियस्स, परिवंदण-माणणपूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्ख-पडिघायहेउं, से सयमेव तसकायसत्थं समार-भति अण्णेहिं वा तसकायसत्थं समारंभावेइ अण्णे वा तसकायसत्थं समारंभमाणे समणुजाणइ।

त्रसकायिक हिंसा

१—हम अनगार हैं ऐसा कहते हुए भी कई इन विविध प्रकार के शस्त्रों से त्रस विषयक कर्म-समारम्भ करते हैं तथा त्रसकाय शस्त्र का समारम्भ करते हुए त्रसकाय के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

२—मनुष्य इस जीवन में प्रशंसा सम्मान और पूजा के लिए, जन्म और मरण से छुटकारा पाने के लिए और दुःख निवारण के हेतु, स्वयं त्रसकाय शस्त्र का समारम्भ करता है दूसरों से शस्त्र समारम्भ करवाता है और शस्त्र-समारम्भ करने वालों को अच्छा समझता है।

त से अहियाए, त से अबोहीए।

एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए।

३—इच्चत्थं गढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेण, तसकायसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

४—एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवति।

एत्थ सत्थं असमारम्भमाणस्स इच्चेते आरंभा परिण्णाया भवति।

यह त्रसकाय की हिंसा करनेवाले के लिए अहितकर होती है यह उसके लिए अबोधि का कारण होती है।

निश्चय ही यह त्रसकाय का समारम्भ बन्धन का कारण है मोह का कारण है, मृत्यु का कारण है और यही निश्चय ही नरक का हेतु है।

३—प्रशंसा-मान-पूजा आदि कामनाओं से गृद्ध मनुष्य इन विविध शस्त्रों द्वारा त्रसकाय हिंसा में संलग्न करता है तथा त्रस का समारम्भ करता हुआ अन्य जीवों की हिंसा के साथ-साथ अन्य अनेक तरह के प्राणियों की भी हिंसा करता है।

४—त्रसकाय में शस्त्र-समारम्भ करनेवाले के ये सब आरम्भ अज्ञात होते हैं।

त्रसकाय में शस्त्र-समारम्भ न करनेवाले को इन सब आरम्भों का ज्ञान होता है।

५—त परिण्णाय मेहावी णेव सयं तसकायसत्थ समारम्भेज्जा, णेवऽण्णहिं तसकायसत्थ समारम्भावेज्जा, णेवऽण्णे तसकायसत्थ समारम्भते समणुजाणेज्जा।

६—जस्सेते तसकायसमारम्भा परिण्णाया भवति से हु मुणी परिण्णायकम्मे—त्ति बेमि।

(श्रु० १ अ० १ उ० ६)

५—यह जानकर मेधावी न स्वयं त्रस जीवकाय के शस्त्र का समारंभ करे, न दूसरों से इस शस्त्र का समारम्भ करावे और न इस शस्त्र के समारम्भ करनेवाले को अच्छा समझे।

६—जिसको त्रस जीव विषयक कर्म-समारंभों का ज्ञान होता है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है—ऐसा मैं कहता हूँ।

६

सत्थपरिन्ना

१—संति पाणा पुढोसिया

(श्रु० १ अ०

२—से बेमि संति पाणा उदय
जीवा अणेगे ।

पप्पइ णे कप्पइ ण पाउ, अदुवा
पुढो सत्थेहिं विउट्टन्ति
एत्थऽवि तेसिं नो निकरणाए
इह च खलु भो । अणगाराण
जीवा वियाहिया

सत्थं चेत्थ अणुवीइ पास, पुढ
पवेइयं

(श्रु० १ अ० १

१.

[illegible]

१—[illegible] ।

२—[illegible]
[illegible] ।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ।

[illegible]
[illegible] ।

[illegible]
भिन्न-भिन्न [illegible] ।

...य के शास्त्र
...म को जानता
...अग्नि के स्वरूप

...के आश्रय में
...य में प्राणी हैं
...ो आप गिरते
...णी संघात को
...ाने ही मूर्छित
...मृत्यु को प्राप्त

...उत्पत्तिशील है
...शील है। जैसे

३—जे दीहलोगसत्थस्स खेयण्णे से असत्थस्स खेयण्णे, जे असत्थस्स खेयण्णे से दीहलोगसत्थस्स खेयण्णे।

से बेमि—सति पाणा पुढवीनिस्सिया तणणिस्सिया पत्तणिस्सिया कट्ठनिस्सिया गोमयणिस्सिया कयवरणिस्सिया, सति संपातिमापाणा आहच्च सवयति, अगणिं च खलु पुट्ठा एगे सघायमावज्जति, जे तत्थ सघायमावज्जति ते तत्थ परियावज्जति, जे तत्थ परियावज्जति, ते तत्थ उद्दायति।

(श्रु० १ अ० १ उ० ४)

४—से बेमि इमपि जाइधम्मय एयपि जाइधम्मय, इमपि वुड्ढिधम्मय एयपि वुड्ढि-

४—जो दीर्घलोकशस्त्र—वनस्पतिकाय के शस्त्र अग्नि—को जानता है वह अशस्त्र—संयम को जानता है, जो अशस्त्र संयम को जानता है वह अग्नि के स्वरूप को जानता है।

मैं कहता हूं पृथ्वी के आश्रय में पत्तों के आश्रय में गोबर के आश्रय में और कचरे के आश्रय में प्राणी हैं तथा सम्पातिम प्राणी हैं जो आकर अग्नि में गिरते हैं। अग्नि से स्पृष्ट हो ऐसे कितने ही प्राणी संघात को प्राप्त करते हैं वहाँ संघात को प्राप्त कर कितने ही मूर्च्छित होते हैं और कितने ही मूर्च्छित हो वहाँ मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

५—मैं कहता हूं जैसे मनुष्य शरीर उत्पत्तिशील है, वैसे ही यह वनस्पतिकाय भी उत्पत्तिशील है, जैसे

धम्मयं, इमपि चित्तमंतयं एयंपि चित्तमंतयं, इमपि छिण्ण मिलाइ एयपि छिण्ण मिलाइ, इमपि आहारगं एयपि आहारगं, इमपि अणिचियं एयपि अणिचियं, इमपि असासयं एयपि असासयं, इमपि चओवचइयं एयपि चओवचइयं, इमपि विपरिणामधम्मयं एयंपि विपरिणाम धम्मयं।

(श्रु० १ अ० १ उ० ५)

६—से बेमि संति मे तसा पाणा, तंजहा—अंडया पोयया जराउआ रसया संसेयया समुच्छिमा उब्भियया उववाइया।

मनुष्य शरीर वृद्धिशील है वैसे ही वनस्पतिकाय भी वृद्धिशील है; जैसे मनुष्य शरीर चितवत् है वैसे ही वनस्पतिकाय भी चितवन् है; जैसे मनुष्य शरीर काटने पर कुम्हला जाता है वैसे ही वनस्पतिकाय भी कुम्हला जाती है; जैसे मनुष्य शरीर आहार करता है वैसे ही वनस्पतिकाय भी आहार करती है; जैसे मनुष्य शरीर अनित्य है वैसे ही वनस्पतिकाय भी अनित्य है; जैसे मनुष्य शरीर अशाश्वत है वैसे ही वनस्पतिकाय भी अशाश्वत है; जैसे मनुष्य शरीर ह्रास और वृद्धिशील है वैसे ही वनस्पतिकाय भी ह्रास और वृद्धिशील है और जैसे मनुष्य शरीर परिणमनशील है वैसे ही वनस्पतिकाय भी परिणमनशील है।

५—मैं कहता हूं—अंडज पोतज जरायुज रसज, सस्वेदज सम्मूर्च्छनज उद्भिज और औपपातिक—ये त्रस प्राणी हैं।

तत्थ तत्थ पुढो पास आतुरा परितावंति।

से बेमि अप्पेगे अच्चाए हणंति, अप्पेगे अजिणाए वहंति, अप्पेगे मंसाए वहंति, अप्पेगे सोणियाए वहंति, एवं हिययाए पित्ताए वसाए पिच्छाए पुच्छाए वालाए सिंगाए विसाणाए दंताए दाढाए णहाए ण्हारुणीए अट्ठीए अट्ठि-मिंजाए

अट्ठाए अणट्ठाए

अप्पेगे हिंसिंसु मेत्ति वा वहंति

अप्पेगे हिंसंति मेत्ति वा वहंति

अप्पेगे हिंसिस्संति मेत्ति वा वहंति।

(श्रु० १ अ० १ उ० ६)

देख! विषयार्त मनुष्य सर्वत्र दूसरे प्राणियों को परिताप देते रहते हैं।

मैं कहता हूं—कोई इन्हें अर्चा के लिए हनन करता है कोई इन्हें चर्म के लिए हनन करता है कोई इन्हें मांस के लिए हनन करता है और कोई इन्हें शोणित के लिए हनन करता है।

इसी तरह हृदय के लिए, पित्त के लिए, चर्बी के लिए, पिच्छी के लिए, पूंछ के लिए, बाल के लिए, सींग के लिए, विषाण के लिए, दांत के लिए, दाढ़ के लिए, नख के लिए, नसों के लिए, अस्थियों के लिए और अस्थि-मज्जा के लिए इनका हनन किया जाता है।

इसी तरह अर्थ अनर्थ अनेक प्रयोजनों से इन्हें मारा जाता है।

कोई—इसने मुझे मारा—इस भावना से हिंसा करता है।

कोई—यह मुझे मारता है—इस भावना से हिंसा करता है।

कोई—यह मुझे मारेगा—इस भावना से हिंसा करता है।

६—तसंति पाणा पदिसो दिसासु
पहू एजस्स दुगुंछणाए,
आयवदंसी अहियंति णच्चा ।

से येमि संति संपाइमा पाणा आहच्च संपयंति य फरिसं च खलु पुट्ठा एगे संघायमावज्जति, जे तत्थ संघायमावज्जति ते तत्थ परियावज्जति, जे तत्थ परियावज्जति ते तत्थ उद्दायंति,

(श्रु० १ अ० १ उ० ७)

७—तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभेज्जा णेवऽण्णेहिं छज्जीवनिकायसत्थं समारम्भावेज्जा, णेवऽण्णे

६—प्राणी दिशा प्रदिशाओं में त्रास पा रहे हैं।

हिंसा से होने वाले आतंक को देखनेवाला हिंसा को अहितकर जानकर वायुकाय के आरम्भ से बचने में समर्थ हो सकता है।

मैं कहता हूं— सम्पातिम प्राणी हैं जो आघात पाकर गिर पड़ते हैं। वायुकाय के स्पर्श को पाकर वे जीव घायल हो जाते हैं। जो वहां घायल हो जाते हैं वे वहां मूर्च्छित हो जाते हैं। जो वहां मूर्च्छित हो जाते हैं वे वहां मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

७—बुद्धिमान मनुष्य यह सब जानकर स्वयं छः जीवनिकाय शस्त्र का समारम्भ न करे न दूसरों से छः जीवनिकाय शस्त्र का समारम्भ करावे और न छः जीव

छज्जीवनिकाय सत्थ समारभंते समणुजाणेज्जा, जस्सेते छज्जीवनिकायसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णाय कम्मे ति बेमि

(श्रु० १ अ० १ उ० ७)

निकाय शस्त्र का समारम्भ करने वालों का अनुमोदन करे।

जिस मुनि को [illegible] जीवनिकाय शस्त्र के समारम्भ का परिज्ञान होता है—जिसने उसको जाना और छोड़ा है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है।

१०

एगेंदियवेयणा

अप्पेगे अधमब्भे अप्पेगे अधमच्छे
अप्पेगे पायमब्भे अप्पेगे पायमच्छे
अप्पेगे गुप्फमब्भे अप्पेगे गुप्फमच्छे
अप्पेगे जघमब्भे अप्पेगे जघमच्छे
अप्पेगे जाणुमब्भे अप्पेगे जाणुमच्छे
अप्पेगे उरुमब्भे अप्पेगे उरुमच्छे
अप्पेगे कटिमब्भे अप्पेगे कटिमच्छे
अप्पेगे णाभिमब्भे अप्पेगे णाभिमच्छे
अप्पेगे उदरमब्भे अप्पेगे उदरमच्छे
अप्पेगे पासमब्भे अप्पेगे पासमच्छे
अप्पेगे पिट्ठिमब्भे अप्पेगे पिट्ठिमच्छे

१०

एकेन्द्रियों की वेदना

जैसे कोई व्यक्ति जन्मान्ध (बहरे, मूक गूंगे)
पुरुष का भेदन करे छेदन करे,
उसके पैरों का भेदन करे छेदन करे,
उसके गुल्फों का भेदन करे छेदन करे,
उसकी जंघा का भेदन करे छेदन करे,
उसकी जानु का भेदन करे छेदन करे,
उसके उरु का भेदन करे छेदन करे,
उसके कमर का भेदन करे छेदन करे,
उसकी नाभि का भेदन करे छेदन करे,
उसके पेट का भेदन करे छेदन करे,
उसके पार्श्वों का भेदन करे छेदन करे,
उसकी पीठ का भेदन करे छेदन करे,

अप्पेगे उरमब्भे अप्पेगे उरमच्छे
अप्पेगे हिययमब्भे अप्पेगे हिययमच्छे
अप्पेगे थणमब्भे अप्पेगे थणमच्छे
अप्पेगे खधमब्भे अप्पेगे खधमच्छे
अप्पेगे बाहुमब्भे अप्पेगे बाहुमच्छे
अप्पेगे हत्थमब्भे अप्पेगे हत्थमच्छे
अप्पेगे अगुलिमब्भे अप्पेगे अगुलिमच्छे
अप्पेगे णहमब्भे अप्पेगे णहमच्छे
अप्पेगे गीवमब्भे अप्पेगे गीवमच्छे
अप्पेगे हणुमब्भे अप्पेगे हणुमच्छे
अप्पेगे होट्ठमब्भे अप्पेगे होट्ठमच्छे
अप्पेगे दतमब्भे अप्पेगे दतमच्छे
अप्पेगे जिब्भमब्भे अप्पेगे जिब्भमच्छे

उसकी छाती का भेदन करे छेदन करे,
उसके हृदय का भेदन करे छेदन करे,
उसके स्तनों का भेदन करे छेदन करे,
उसके कंधों का भेदन करे छेदन करे,
उसकी भुजाओं का भेदन करे छेदन करे,
उसके हाथों का भेदन करे छेदन करे,
उसकी अगुलियों का भेदन करे छेदन करे,
उसके नखों का भेदन करे छेदन करे,
उसकी ग्रीवा का भेदन करे छेदन करे,
उसकी दाढ़ी का भेदन करे छेदन करे,
उसके ओठों का भेदन करे छेदन करे,
उसके दांतों का भेदन करे छेदन करे,
उसकी जीभ का भेदन करे छेदन करे,

अप्पेगे तालुमब्भे अप्पेगे तालुमच्छे
अप्पेगे गलमब्भे अप्पेगे गलमच्छे
अप्पेगे गंडमब्भे अप्पेगे गंडमच्छे
अप्पेगे कण्णमब्भे अप्पेगे कण्णमच्छे
अप्पेगे णासमब्भे अप्पेगे णासमच्छे
अप्पेगे अच्छिमब्भे अप्पेगे अच्छिमच्छे
अप्पेगे भमुहमब्भे अप्पेगे भमुहमच्छे
अप्पेगे णिडालमब्भे अप्पेगे णिडालमच्छे
अप्पेगे सीसमब्भे अप्पेगे सीसमच्छे
अप्पेगे संपमारए अप्पेगे उद्दवए

(श्रु० १ अ० १ उ० २)

उसके तालु का भेदन करे छेदन करे,

उसके गले का भेदन करे छेदन करे,

उसके गाल का भेदन करे छेदन करे

उसके कान का भेदन करे छेदन करे

उसके नाक का भेदन करे छेदन करे,

उसकी आँखों का भेदन करे छेदन करे,

उसकी भृकुटि का भेदन करे छेदन करे,

उसके ललाट का भेदन करे छेदन करे,

उसके सिर का भेदन करे छेदन करे,

उसे पीटे या प्राण रहित करे तो जैसे उसे पीड़ा होती है वैसे ही पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय स्थावर जीवों को होती है।

११

महावीहिं

१—अदुवा अदिन्नादाण

(श्रु० १ अ० १ उ० ३)

२—लोग च आणाए अभिसमेचा अकुओभय

(श्रु० १ अ० १ उ० ३)

३—से बेमि णेव सयं लोग अब्भाइक्खिज्जा णेव अत्ताण अब्भाइक्खिज्जा। जे लोय अब्भाइक्खइ से अत्ताण अब्भाइक्खइ, जे अत्ताण अब्भाइक्खइ से लोय अब्भाइक्खइ

(श्रु० १ अ० १ उ० ३)

११

महापथ

१—जीवों की हिंसा अदत्तादान—चोरी—है।

२—तीर्थंकरों की आज्ञा—उपदेश—से जीव-समूह को जानकर अकुतोभय का पालन करे—जिससे किसी भी प्राणी को भय न हो ऐसे अभयरूप संयम का पालन करे।

३—मैं कहता हूं—मनुष्य स्वयं जीवों का अपलाप न करे न अपनी आत्मा का अपलाप करे। जो जीवों का अपलाप करता है वह आत्मा का अपलाप करता है। जो आत्मा का अपलाप करता है वह जीवों का अपलाप करता है।

४—निज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेय परिनिव्वाण सव्वेसिं पाणाण सव्वेसिं भूयाण सव्वेसिं जीवाण सव्वेसिं सत्ताण असाय अपरिनिव्वाण महब्भय दुक्ख ति बेमि

(श्रु० १ अ० १ उ० ६)

५—जे अज्झत्थ जाणइ,
से बहिया जाणइ।
जे बहिया जाणइ,
से अज्झत्थ जाणइ।
एय तुलमन्नेसिं

(श्रु० १ अ० १ उ० ७)

६—जे पमत्ते गुणट्ठीए से हु दडेत्ति पवुच्चइ

(श्रु० १ अ० १ उ० ४)

४—मैं चिन्तन कर देख कर कहता हूँ—हर प्राणी को दुख अप्रिय है। सर्व प्राणी सर्व भूत सब जीव सर्व सत्वों को असाता अप्रिय महाभय का कारण और दुख रूप है।

५—जो अपने अन्तःस्थल को—अपनी सुख दुख की भावना को जानता है वह बाहर को—दूसरे की भावना को भी जानता है। जो दूसरे की भावना को जानता है वह अन्तःस्थल की भावना को जानता है। सुख की भावना दूसरों में भी अपने समान है—इस तुला का अन्वेषण कर।

६—जो प्रमादी है जो विषयार्त्त है वह निश्चय ही दण्ड देने वाला—जीवों को हनन करने वाला है।

७—वीरेहिं एय अभिभूय दिट्ठं संजएहिं सया जत्तेहिं सया अप्पमत्तेहिं

(श्रु० १ अ० १ उ० ४)

८—तं परिण्णाय मेहावी इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं

(श्रु० १ अ० १ उ० ४)

९—लज्जमाणा पुढो पास

(श्रु० १ अ० १ उ० ४)

१०—जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे

(श्रु० १ अ० १ उ० ५)

७—संयती सदा यत्नवान् और सदा अप्रमत्त वीर पुरुषों ने कर्मों को पराजय कर यह देखा है।

८—यह जानकर मेधावी निश्चय करे कि मैंने प्रमाद वश पहले किया वह अब नहीं करूंगा।

९—देख! हिंसा से शर्माने वाले विरले हैं।

१०—जो गुण है—विषयासक्ति है—वही आवर्त है—जन्म जन्मान्तर का फेरा है, जो आवर्त है—वह विषयासक्ति है।

११—उड्ढ अव तिरियं पाईणं पासमाणे रूवाइं पासति, सुणमाणे सहाइं सुणेति

उड्ढं अव पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छति सद्देसु आवि

एस लोए वियाहिए

(श्रु० १ अ० १ उ० ५)

१२—एत्थ अगुत्ते अणाणाए पुणो पुणो गुणासाए वंकसमायारे पमत्ते आगार-मावसे

(श्रु० १ अ० १ उ० ५)

१३—से बेमि से जहावि अणगारे उज्जुकडे नियायपडिवण्णे अमायं कुव्वमाणे वियाहिए

(श्रु० १ अ० १ उ० ३)

११—ऊर्ध्व अधो तिर्यक तथा पूर्वादि दिशाओं में [illegible] देखता हुआ जीव रूप देखता है, सुनता हुआ [illegible] सुनता है।

ऊर्ध्व अधो तिर्यक तथा पूर्वादि दिशाओं में आसक्त होता हुआ जीव रूप में आसक्त होता [illegible] में आसक्त होता है।

यह मूर्च्छाभाव ही संसार कहा गया [illegible]।

१२—जो रूप और शब्दादि से [illegible] को गुप्त नहीं रखता—नहीं [illegible] उल्लंघन कर बार-बार विषय [illegible] वाला बन प्रमादी हो (पुनः) [illegible]।

१३—मैं कहता हूँ—जो [illegible] दर्शन चारित्र-तप रूप) मोक्ष [illegible] और [illegible] माया नहीं करता वही [illegible] है।

१४—तं णो करिस्सामि समुट्ठाए मत्ता मइम अभय विदित्ता तं जे णो करए, एसोवरए एत्थोवरए एस अणगारेत्ति पवुच्चइ

(श्रु० १ अ० १ उ० ५)

१५—जाए सद्धाए निक्खंतो तमेव अणुपालिज्जा, वियहित्ता विसोत्तिय

(श्रु० १ अ० १ उ० ३)

१६—पणया वीरा महावीहिं

(श्रु० १ अ० १ उ० ३)

१४—अभय [redacted] विहित जानकर जो मतिमान् 'हिंसा नहीं करूँगा'—ऐसी प्रतिज्ञा ग्रहण कर जीवहिंसा नहीं करता वही उपरत—वास्तव में विरत है और जो हिंसा से उपरत है—विरत है वही अनगार कहा जाता है।

१५—विचिकित्सा—शंका को दूर कर। जिस श्रद्धा के साथ निष्क्रमण किया है—गृहत्याग कर प्रव्रज्या ली है उसी श्रद्धा के साथ संयम का पालन कर।

१६—वीर पुरुष अहिंसा के महापथ पर चल चुके हैं।

१२

लोभविजयो

१—जे गुणे से मूलट्ठाणे,
जे मूलट्ठाणे से गुणे।

२—इति से गुणट्ठी महया परियावेण पुणो पुणो वसे पमत्ते

३—तजहा—माया मे, पिया मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धूआ मे, ण्हुसा मे, सहिसयण सगथसथुआ मे, निविवत्तुवगरणपरिवट्टण-भोयणच्छायण मे।

इच्चत्थ गड्ढिए लोए वसे पमत्ते।

१२

लोकविजय

१—जो गुण है—इन्द्रियों के शब्दादि विषय हैं वे मूलस्थान—संसार के मूलभूत कारण हैं। जो मूलस्थान—संसार के मूलभूत कारण हैं वे गुण—शब्दादि विषय हैं।

२—इसी कारण जो विषयार्थी होता है वह बार-बार प्रमाद-ग्रस्त हो महान् परिताप से (संतप्त रहता है)।

३—जैसे—मेरी माता मेरा पिता, मेरी भार्या मेरे पुत्र मेरी पुत्री मेरी पुत्र-वधू मेरे मित्र स्वजन परिजन, परिचित मेरे नाना उपकरण, सम्पत्ति अन्न और वस्त्रादि—इस प्रकार प्राणी इन सब में आसक्त रहता है।

वह प्रमादी (निरन्तर चिन्ता में) वास करता है।

४—अहो य राओ य परितप्पमाणे
कालाकालसमुट्ठाई संजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे
सहसाकारे विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो पुणो

५—अप्पं च खलु आउयं इहमेगेसिं
माणवाण

६—तजहा—सोयपरिण्णाणेहिं परिहाय-
माणेहिं, चक्खुपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं,
घाणपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, रसणापरि-
ण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, फासपरिणाण्णेहिं
परिहायमाणेहिं, अभिकंत च खलु वयं स पेहाए
तओ से एगया मूढभावं जणयन्ति

४—रात दिन इनकी चिन्ता से सन्तप्त संयोगार्थी—नाना सुख संयोग की कामना करनेवाला अर्थलोभी मनुष्य काल और अकाल की परवाह न कर उद्यम करता हुआ एकाग्र चित्त से साहस पूर्वक - निर्भय रूप से—लूट-खसोट करता है और प्राणियों पर बार-बार शस्त्र चलाता है—उनकी हिंसा करता है।

५—निश्चय ही इस संसार में कितने ही मनुष्यों का आयुष्य अल्प—बहुत थोड़ा - होता है।

६—श्रोत्रेन्द्रियज्ञान के क्षीण होने पर चक्षुज्ञान के क्षीण होने पर नासिकाज्ञान के क्षीण होने पर जिह्वाज्ञान के क्षीण होने पर तथा स्पर्शेन्द्रियज्ञान के क्षीण होने पर अपनी आक्रान्त अवस्था को देख कदाचित् वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है।

७—जेहिं वा-सद्धिं सवसइ ते वि ण एगयर णियगा पुव्विं परिवयन्ति सोऽवि ते णियए पच्छा परिवएज्जा

८—नाल ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुम पि तेसिं नाल ताणाए वा सरणाए वा,

९—से ण हासाए, ण कीड्डाए, ण विभूसाए

१०—इच्चेव समुट्ठिए अहोविहाराए

११—अन्तर च खलु इम सपेहाए धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए

७—जिनके साथ वह बसता है कदाचित् वे ही आत्मीय जन पहले उसका परिहार करते हैं अथवा वह ही उनका बाद में परिहार करता है।

८—उस समय (जब इन्द्रिय बल क्षीण हो रहे हों) कुटुम्बी तुम्हारी रक्षा करने या तुम्हें शरण देने में समर्थ नहीं होते और न तुम ही उनकी रक्षा करने या उन्हें शरण देने में समर्थ होते हो।

९—वृद्ध हो जाने पर मनुष्य न हास्य के हो न क्रीड़ा के हो न रति के हो और न शृंगार के हो योग्य रहता है।

१०—इस प्रकार तुम लम्बी यात्रा पर हो।

११—इस मनुष्य-भव को बीच का मौका—सुयोग—समझ धीर मनुष्य मुहूर्त भर भी प्रमाद न करे।

१२ यओ अच्चेति जीव्वण व

१३—जीविए इह जे पमत्ता, से हता, छेत्ता, भेत्ता, लुपित्ता, विलुपित्ता, उद्दवेत्ता, उत्तासइत्ता अकड करिस्सामित्ति मण्णमाणे

१४—उयाइयसेसेण वा सनिहिसनिचओ किज्जई इहमेगेसिं असजयाण भोयणाए, तओ से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जति

१५—जाणित्तु दुक्ख पत्तेय साय

१२—आयु और यौवन बीता जा रहा है।

१३—जो इस नाशवान् जीवन में प्रमादी होता है वह घातक—घात करने वाला छेदक—छेदन करने वाला भेदक—भेदन करने वाला लोपक—लूटने वाला विलोपक—लूट-खसोट करने वाला उपद्रवी—मारने वाला और त्रासक—त्रास उत्पन्न करने वाला, 'जो किसी ने नहीं किया वह मैं करूंगा' ऐसा मानता हुआ (अपनी इच्छा को साथ लिए हुए ही चल बसता है)।

१४—इस संसार में कई-कई असंयती मनुष्य बचे हुए अथवा अन्य द्रव्यों का अपने उपभोग के लिए संचय करते हैं, पर उपभोग काल के समय कदाचित् रोगग्रस्त हो सकते हैं।

१५—हर प्राणी के सुख-दुःख पृथक-पृथक हैं—यह

अणभिक्कंत च खलु वयसपेहाए खण जाणाहि पडिए

१६—जाव सोयपरिण्णाणा अपरिहीणा, नेत्तपरिण्णाणा अपरिहीणा, घाणपरिण्णाणा अपरिहीणा जीहपरिण्णाणा अपरिहीणा, फरिसपरिण्णाणा अपरिहीणा, इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं पण्णाणेहिं अपरिहीणेहिं आयट्ठं सम समणुवासिज्जासि

(श्रु० १ अ० २ उ० १)

१७—अरइ आउट्टे से मेहावी, खणसि मुक्के

जानकर तथा बाकी बची आयु को देखकर हे पंडित! इसी क्षण को (धर्म का) अवसर जान।

१६—जब तक श्रोत्र-बल क्षीण नहीं होता नेत्र बल क्षीण नहीं होता घ्राण-बल क्षीण नहीं होता जिह्वा-बल क्षीण नहीं होता स्पर्श-बल क्षीण नहीं होता—ये सारे बल क्षीण नहीं होते उसके पहले-पहले ही आत्मार्थ का सम्यक् रूप से—अच्छी तरह से—आराधन कर।

१७—अरति—संयम के प्रति अरुचि भाव—को दूर कर ऐसा करनेवाला मेधावी क्षण मात्र में मुक्त होता है।

१८—अणाणाय पुट्ठावि एगे नियट्टंति, मंदा मोहेण पाउडा

१९—अपरिग्गहा भविस्सामो समुट्ठाय लद्धे कामे अभिगाहइ, अणाणाए मुणिणो पडिलेहंति

२०—इत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ना नो हव्वाए नो पाराए

२१—विमुत्ता हु ते जणा जे जणा पारगामिणो लोभमलोभेण दुगुंछमाणे लद्धे कामे णाभिगाहइ

१८—कितने ही मंदबुद्धि मोह-ग्रस्त पुरुष अनाज्ञा से—धर्म के प्रति अरुचि भाव से—युक्त हो संयम से पतित हो जाते हैं।

१९—हम अपरिग्रही बनेंगे—इस भावना से संयम में समुत्थित होकर कितने ही (मंद पराक्रमी पुरुष) प्राप्त भोगों को ग्रहण करते—सेवन करते हैं। कितने ही (नामधारी) मुनि वीतराग देव की आज्ञा के खिलाफ विषय भोगों को ढूंढते रहते हैं।

२०—इस प्रकार पुन-पुन विषयों के भोग में आसक्त पुरुष न इस पार का रहता है न उस पार का। (वह न इस लोक का रहता है न परलोक का।

२१—जो पुरुष पारगामी हैं—लोभ संज्ञा को पार कर चुके—वे विमुक्त हैं। वे लोभ के प्रति अलोभ से घृणा करते हुए प्राप्त भोगों का सेवन नहीं करते।

२२—विणाति लोम णिक्खम्म एस अकम्मे जाणइ पासइ

२३—पडिलेहाए णावकंखइ, एस अणगारित्ति पवुच्चइ

२४—से आयबले, से णाइबले,
से मित्तबले, से पिच्चबले,
से देवबले, से रायबले,
से चोरबले, से अतिहिबले,
से किविणबले, से समणबले,
इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं
दण्डसमायाण

२२—जो बिना किसी प्रकार के लोभ के निष्क्रमण कर—प्रव्रज्या ग्रहण कर—(संयम का पालन करता है) वह कर्म-रहित हो सब जानता और देखता है।

२३—यह विचार कर लो कि जो (छोड़े हुए विषयों की) आकांक्षा नहीं करता उसे अनगार कहा गया है।

२४—वह आत्मबल—शरीरबल ज्ञातिबल मित्रबल प्रेतबल, देवबल राजबल चोरबल अतिथिबल कृपणबल श्रमणबल (इनको पाने के लिए) इन भिन्न भिन्न प्रकार के कार्यों द्वारा दण्ड समादान—हिंसा करता है।

२२—विणावि लोभ णिक्खम्म एस अकम्मे जाणइ पासइ

२३—पडिलेहाए णावकंखइ, एस अणगारित्ति पवुच्चइ

२४—से आयबले, से णाइबले,
से मित्तबले, से पिच्चबले,
से देवबले, से रायबले,
से चोरबले, से अतिहिबले,
से किविणबले, से समणबले,
इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं
दंडसमायाण

८३—जो जिन बिंबो द्वारा है शरीर के निष्क्रमण का—प्रयत्न रूप था—(पंचत्व का पालन करता) वह सर्वसंग से रहित ध्यान और देखता है।

८४—जो विचार का लोभ भी (छोटे बड़े जिस्मानी की) बढ़ाता नहीं करता उसी अनगार कहा गया है।

८६—जो कायबल—वाचिकबल मानसिक विपक्ष प्रेमबल देवबल राजबल, चोरबल अतिथिबल कृपणबल, श्रमणबल (इनको पाने के लिए) इन भिन्न भिन्न प्रकार के कार्यों द्वारा दण्ड समारम्भ—हिंसा करता है।

त्पन्न हुआ

क वक्ता

का भव

उसकी

२८—से असइं उचागोए, असइं नीआगोए,

नो हीणे नो अइरित्ते,

नोऽपीहए,

इय सखाय को गोयावाइ को माणावाई ?
कंसि वा एगे गिज्झा

२९—तम्हा नो हरिसे नो कुप्पे,
भूएहिं जाण पडिलेह सायं,
समिए एयाणुपस्सी

२८—यह जीव अनेक बार उच्च गोत्र में उत्पन्न हुआ है और अनेक बार नीच गोत्र में।

इससे न कोई हीन हुआ और न अतिरिक्त बढ़ा (जीव सदा असंख्यात प्रदेशों ही रहा और उसका भव भ्रमण नहीं छूटा)।

(जिसका सम्बन्ध भव भ्रमण के साथ है) उसकी स्पृहा मत करो।

यह विचार कर कौन अपने गोत्र का वाद करेगा—उसका ढिंढोरा पीटेगा? कौन उसका अभिमान करेगा?

वह किस एक वाद में गृद्ध होगा—आसक्त होगा?

२९—अतः (अपने उच्च गोत्र का) हर्ष न करे, न (नीच गोत्र के कारण) दूसरे किसी के प्रति कुपित हो।

विचार कर जान सात—सुख सब जीवों को प्रिय है।

यह देखने वाला पुरुष समित हो (किसी का दिल दुखाने वाला व्यवहार न करे)।

३०—तंजहा—अंधत्त, बहिरत्त, मूयत्त, काणत्त, कुंटत्त, खुज्जत्त, वडभत्त, सामत्त, सयलत्त , सह पमाएण अणेगरूवाओ जोणीओ संधायइ, विरूव-रूवे फासे पडिसवेयइ

३१—से अबुज्झमाणे हओवहए जाईमरण अणुपरियट्टमाणे

३२—जीवियं पुढो पियं इहमेगेसिं माणवाण खित्तवत्थुममायमाणाणं

३०—अंधा होना बहरा होना गूंगा होना काना होना लूला होना, कुबड़ा होना बौना होना श्याम होना और कोढ़ी होना (—यह सब अभिमान का कारण है)। प्रमाद के कारण ही जीव विविध रूप—नाना योनियों में जन्म ग्रहण करता है और अनेक प्रकार के स्पर्शों का संवेदन करता है (—नाना प्रकार की यातनाओं को भोगता है)।

३१—(जाति आदि मद से इस तरह हीनत्व प्राप्त होता है—) यह न समझने वाला (अभिमानी) पुरुष हतोपहत हो जन्म-मरण के चक्र में आवर्तन—भ्रमण—करता है।

३२—इस संसार में क्षेत्र और गृहादि में माया—मोह करनेवाले मानवों को अपना जीवन पृथक् रूप से—विशेष रूप से—प्रिय होता है।

३३—आरत्त विरत्त मणिकुण्डल सह-हिरण्णेण इत्थियाओ परिगिज्झति तत्थेव रत्ता।

न इत्थ तवो वा दमो वा नियमो वा दिस्सइ

३४—सपुण्ण बाले जीविउकामे लालप्प माणे मूढे विप्परियासमुवेइ

३५—इणमेव नावकंखंति, जे जणा धुव-चारिणो। जाइमरण परिन्नाय, चरे संकमण दढे।

३६—नत्थि कालस्स णागमो

३३—वे रंग बिरंगे वस्त्र मणि कुण्डल स्वर्ण और स्त्री प्राप्त कर उन्हीं में आसक्त रहते हैं।

उन्हें यहाँ तप, दम नियम—कुछ नहीं दिखाई देता।

३४—जीवन की कामना करने वाला निरा बाल (अत्यागी) और मूढ़ मनुष्य भोगों के लिए प्रलाप करता हुआ विपर्यय भाव को प्राप्त होता है।

३५—जो मनुष्य ध्रुवचारी हैं वे सांसारिक विषय भोगों की आकांक्षा नहीं करते। मुमुक्षु जन्म-मरण के स्वरूप को जानकर संयम में दृढ़ता पूर्वक विचरे।

३६—काल के लिए कोई समय असमय नहीं। काल से कोई मुक्त है, ऐसा नहीं है।

३७ सव्वे पाणा पियाउया,
सुहसाया दुक्खपडिकूला,
अप्पियवहा पियजीविणो,
जीविउकामा,
सव्वेसिं जीवियं पियं।
नाइवाइज्ज कचण

३८—मुणिणा हु एयं पवेइयं
अणोहंतरा एए नो य ओहं तरित्तए,

अतीरंगमा एए नो य तीरं गमित्तए,

अपारंगमा एए नो य पारं
गमित्तए,

३७—सर्व प्राणियों को आयु प्रिय है।

सुख सब को साताकारी—अनुकूल है और दुःख सब को प्रतिकूल।

वध सब को अप्रिय है और जीवन सब को प्रिय।

सर्व प्राणी जीने की कामना करते हैं।

सब को जीवन प्रिय है।

अतः किसी प्राणी की हिंसा मत करो।

३८—मुनि ने यह कहा है—

निश्चय ही ये जो अनोघंतर हैं—क्रोध मान माया लोभ को नहीं तिरते वे भवसागर को नहीं तर सकते हैं।

ये जो अतीरगम हैं—इन्द्रियों के विषयों को पारकर तीर नहीं पहुंचते वे संसार-सागर के तट पर नहीं पहुंच सकते।

ये जो अपारगम हैं—राग द्वेष के पार नहीं पहुंचते वे संसार समुद्र का पार पाने में समर्थ नहीं हो सकते।

३९—आयाणिज्ज च आयाय तमि ठाणे ण चिट्ठइ। वितह पप्पऽखेयन्ने तमि ठाणमि चिट्ठइ।

४०—उद्देसो पासगस्स णत्थि

४१—बाले पुण निहे कामसमणुन्ने असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्ट-मणुपरियट्टइ

(श्रु० १ अ० २ उ० ३)

४२—तओ से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जति।

४३—जेहिं वा सद्धि संवसइ ते एव ण एगया नियया पुव्वि परिवयति, सो वा ते नियगे पच्छा परिवइज्जा

३९—अज्ञानी पुरुष तथ्य पाकर भी संयम-स्थान में नहीं ठहरता। वह वितथ्य को पाकर असंयम स्थान में ठहरता है।

४०—पश्यक—द्रष्टा—के लिए उपदेश नहीं है।

४१—मूर्ख मोहग्रस्त और कामासक्त व्यक्ति का दुःख शमित नहीं होता। वह दुःखी व्यक्ति दुःखों के ही आवर्त में अनुपरिवर्तित होता रहता है दुःखों के ही चक्र में जन्म मरण धारण करता रहता है।

४२—फिर उसके कदाचित् एक ही साथ उत्पन्न अनेक रोगों का प्रादुर्भाव होता है।

४३—जिनके साथ मनुष्य वास करता है वे ही निज के लोग उसकी पहले निन्दा करते हैं अथवा वह ही पीछे उनकी निन्दा करता है।

४४—नाल ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमपि तेसिं नाल ताणाए वा सरणाए वा

४५—जाणित्तु दुक्ख पत्तेय साय

४६—भोगा मे व अणुसोयति इहमेगेसिं माणवाण

४७—स परिगिज्झ दुपय चउप्पय अभि-जुजिया ण ससिचियाण तिविहेण जाऽवि से तत्थ मत्ता भवइ, अप्पा वा बहुया वा, से तत्थ गढिए चिट्ठइ भोअणाए

(श्रु० १ अ० २ उ० ३)

४४—रोग उत्पन्न होने पर वे तुम्हारी रक्षा करने में या तुम्हें शरण देने में समर्थ नहीं होते, और न तुम ही उनका त्राण करने या उन्हें शरण देने में समर्थ होते हो।

४५—सुख दुःख प्रत्येक का अपना-अपना जानकर (दूसरों के मोह से पाप कार्य मत कर)।

४६—इस संसार में मनुष्यों में एक-एक ऐसे होते हैं जो केवल भोगों का ही अनुशीलन—उन्हीं की वाञ्छा करते रहते हैं।

४७—फिर वह द्विपद चतुष्पद को ले उन्हें काम में लगा तीन करण तीन योग से संचय करता है और संचित वस्तुओं की जो भी मात्रा होती है थोड़ी या अधिक उसमें वह भोग करने के लिए आसक्त रहता है।

४८—तओ से एगया विपरिसिट्ठ सभूय महोयगरणं भवइ।

४९—त पि से एगया दायाया विभयन्ति, अदत्तहारो वा से अवहरति, रायाणो वा से, विलुपन्ति नस्सइ वा से विणस्सइ वा से, अगारडाहेण वा से डज्झइ।

५०—इय से परस्स अट्ठाए कूराणि कम्माणि बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परिया-समुवेइ

५१—आस च छदं च विगिंच धीरे। तुम चेव त सल्लमाहट्टु

४८—फिर कालान्तर में बची हुई विविध प्रकार की वह भोग सामग्री इकट्ठी हो जाने से वह प्रचुर द्रव्य राशि वाला हो जाता है।

४९—उसको कभी दायदा—भागीदार बांट लेते हैं कभी उस सम्पत्ति को चोर चुरा लेते हैं, कभी राजा उसे छीन लेता है; कभी वह नाश को प्राप्त होती है; कभी वह विनष्ट हो जाती है और कभी घर में अग्नि लगने से वह जल जाती है।

५०—इस प्रकार वह मूर्ख दूसरों के लिये क्रूर कर्म करता हुआ उस दुःख से—धन के नाश होने से उत्पन्न दुःख से—मूढ़ बन विपर्यास को प्राप्त करता है।

५१—हे धीर पुरुष! तू आशा और स्वच्छंदता का त्याग कर। तू इस काँटे को रख कर अपने ही आप दुःखी होता है।

५२—जेण सिया, तेण नो सिया, इणमेव नावबुज्झन्ति जे जणा मोहपाउडा

५३—थीभि लोए पव्वहिए
ते भो ! वयन्ति 'एयाइं आययणाइं'
से दुक्खाए, मोहाए, माराए,
नरगाए नरगतिरिक्खाए।

५४—सयय मूढे धम्म नाभिजाणइ,
उदाहु– वीरे अप्पमाओ महामोहे,
अलं कुसलस्स पमाएणं, सतिमरण

५२—जिससे—जिस धनादि से—तुम्हारी इन्द्रियों को सुखानुभव होता है उससे तुम्हारी आत्मा को सुख नहीं होता।

जो मोहग्रस्त हैं वे इस तत्त्व को नहीं समझते।

५३—यह संसार स्त्रियों से पराजित है—हार चुका है। विषयार्थी मनुष्य स्त्रियों को सुख का आयतन—घर—कहते हैं। हे मनुष्यो! यह उनका कथन उनके लिए दुःख मोह मृत्यु नरक तथा नरक-तिर्यंच योनि का कारण होता है।

५४—सतत मूढ़ मनुष्य अपने धर्म को नहीं जानता। वीर पुरुषों ने महामोह में—कांचन कामिनी में—अप्रमाद कहा है—प्रमाद न करने की शिक्षा दी है। अप्रमाद से शान्ति—मोक्ष—और प्रमाद से मृत्यु देख कर तथा इस शरीर को भंगुरधर्मी जान कर, कुशल पुरुष को प्रमाद

सपेहाए भेउरधम्म सपेहाए, नाल पास

अल ते एएहिं

एव पस्स मुणी ! महब्भय ।

५५—णाइवाइज्ज कचण

५६—एस वीरे पससिए, जे ण निव्विज्जइ आयाणाए

५७—न मे देइ ण कुप्पिज्जा
थोव लद्धुं न खिसए,
पडिसेहिओ परिणमिज्जा,
एय मोण समणुवासिज्जासि

से क्या प्रयोजन ? [illegible]
तृष्णा शान्ति के लिए) पर्याप्त नहीं है।

हे पुरुष ! फिर तुम्हें [illegible]

हे मुनि ! इस प्रकार ([illegible]

५५ — (तुच्छ विषय भोग के [illegible]
की हिंसा मत कर।

५६ जो पुरुष संयम में [illegible]
वीर और प्रशंसित है।

५७— मुझे नहीं [illegible]
कोप—क्रोध—नहीं करता [illegible]
मुनि दाता की निन्दा न करे। [illegible]
लौट जाय। इस प्रकार [illegible]
की—सम्यक प्रकार आराधना करे।

५८—जमिण विरूवरूवेहिं सत्थेहिं लोगस्स कम्मसमारम्भा कज्जंति तजहा—अप्पणो से पुत्ताण धूयाण सुण्हाण नाईण धाईण राईण दासाण दासीण कम्मकराण कम्मकरीणं आएसाए पुढो पहेणाए सामासाए पायरासाए, सनिहिसनिचओ कज्जइ।

इहमेगेसिं माणवाण भोयणाए

५९—समुट्ठिए अणगारे आरिए आरियपन्ने आरियदंसी अयसंधिति अदक्खु

५८—लोगों द्वारा विविध शस्त्रों से कर्म समारम्भ किये जाते हैं। जैसे कि मनुष्य अपने लिए, पुत्र पुत्रियों पुत्रवधुओं आत्मीय जनों धात्रियों राजा दास दासी कमकार कर्मकरी और अतिथियों के लिए, अपने भिन्न २ सम्बन्धियों के भेजने के लिए तथा शाम और प्रातःकाल के भोजन के लिए सन्निधि और सन्निचय करता है।

(इस तरह) ससार में कितने ही ऐसे मनुष्य हैं जिनके भोजन के लिए (कर्म समारम्भ किये जाते हैं)।

५९—संयम में समुत्थित—उद्यमी आर्य आर्यप्रज्ञ और आर्यदर्शी अनगार यही सन्धि है—निर्जीव आहार पानी आदि पाने का ठिकाना है—यह देखनेवाला [illegible]।

६०—से नाईए नाइयावए न समणुजाणइ

सव्वामगंध परिन्नाय, निरामगंधो परिव्वए।

६१—अदिस्समाणे कयविक्कएसु,

सेण किणे न किणावए किणंतं न समणुजाणइ

६२—से भिक्खू कालन्ने बालन्ने मायन्ने खेयन्ने खणयन्ने विणयन्ने ससमयपरसमयन्ने

९०—वह अकल्पनीय आहार ग्रहण न करे न करावे और न करनेवालों की अनुमोदना करे।

सर्व अग्रहणीय को जानकर ग्रहणीय पर जीवन चलावे।

९१—अनगार क्रय विक्रय में अदत्तमान् हो—उससे दूर रहे।

वह न स्वयं खरीदे न दूसरे से खरीदवाये और न कोई खरीदता हो उसे अच्छा जाने।

९२—जो भिक्षु कालज्ञ (भिक्षा के समय को जानने वाला) बलज्ञ (भिक्षा देनेवाले की शक्ति को जानने वाला) मात्रज्ञ (भिक्षा के प्रमाण को जाननेवाला) क्षणज्ञ (भिक्षा-प्राप्ति के क्षण—अवसर—को जानने वाला) विनयज्ञ (भिक्षा के नियमों को जाननेवाला)

भायन्ने परिगह् अममायमाणे कालाणुट्ठाइ अपडिण्णे, दुहओ छेत्ता नियाइ।

६३—वत्थ पडिग्गह कबल पायपुंछण उग्गहण च कडासण एएसु चेव जाणिज्जा

६४—उद्दे आहारे अणगारो माय जाणिज्जा

लाभुत्ति न मज्जिज्जा

अलाभुत्ति न सोइज्जा

स्वसमयपरसमयज्ञ—(स्व सिद्धान्त और पर-सिद्धान्त को जाननेवाला) और भावज्ञ (दूसरे के अभिप्राय को जाननेवाला) होता है, जो परिग्रह में—भोगोपभोग सामग्री में—ममता नहीं करनेवाला होता है जो यथा काल अनुष्ठान करनेवाला होता है, जो प्रतिज्ञ नहीं होता वह राग द्वेष को छेद कर मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ता है।

९३—भिक्षु वस्त्र प्रतिग्रह—पात्र कम्बल पाद पुंछनक—रजोहरण अवग्रह—स्थान कटासन—शय्या और आसन—गृहस्थों से याच ले।

९४—आहार लब्ध होने पर अनगार मात्रा—कितना लेना यह—जाने।

भिक्षु भिक्षा मिलने पर गर्व न करे।

न मिलने पर सोच न करे।

बहुपि लद्धुं न निहे
परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्किज्जा
अण्णहा ण पासए परिहरिज्जा
एस मग्गे आयरिएहिं पवेइए
जहित्थ कुसले नोवलिंपिज्जासि

६५—कामा दुरतिक्कमा, जीवियं दुप्पडिवूहग
फामकामी खलु अयं पुरिसे,
से सोयइ जूरइ तिप्पइ पिड्डइ परितप्पइ

६६—आययचक्खू लोगविपस्सी लोगस्स अहोभागं जाणइ उड्ढं भागं जाणइ तिरियं भागं जाणइ

अधिक मिलने पर संग्रह न करे।

वह परिग्रहसे आत्मा को दूर रखे।

अन्यथा देखता हुआ (ममत्व से) परिहार करे।

यह मार्ग आर्यों तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट है। इसमें कुशल पुरुष कर्मबन्धन से लिप्त नहीं होता।

६५—कामनाएँ दुरतिक्रम हैं—इनका पार पाना दुष्कर है। यह जीवन बढ़ाया नहीं जा सकता।

यह कामकामी—कामभोग की कामना करनेवाला—पुरुष निश्चय ही शोक करता है, खिन्न होता है मर्यादा से भ्रष्ट हो जाता है तथा दुःख और परिताप का अनुभव करता है।

६६—जो आयतचक्षु—दीर्घदर्शी और लोकदर्शी—लोक की विभिन्नता को देखनेवाला है वह लोक के अधोभाग ऊर्ध्वभाग और तिर्यग्भाग को उनके स्वरूप को—जानता है।

६७—गड्डिए लोए अणुपरियट्टमाणे

६८—संधिं विइत्ता इह मच्चिएहिं
एस वीरे पसंसिए जे बद्धे पडिमोयए

६९—जहा अंतो तहा बाहिं
जहा बाहिं तहा अंतो
अंतो-अंतो पूइदेहंतराणि पासइ
पुढोविसवंताइं पंडिए पडिलेहाए

७०—से मइमं परिन्नाय मा य हु लालं
पच्चासी

६७—वासना में मूढ मनुष्य इस संसार में परिभ्रमण करते हैं।

६८—इस मनुष्य-जन्म में संधि जानकर—उद्धार का अवसर जानकर—जो कर्मों से बद्ध आत्मप्रदेशों को मुक्त करता है वही वीर और प्रशंसा का पात्र है।

६९—यह शरीर जैसा अन्दर से असार है वैसा ही बाहर से असार है। और जैसा बाहर से असार है वैसा ही अन्दर से असार है।

ज्ञानी देह के अन्दर की अशुचि तथा बाहर स्राव करते देह के भिन्न भिन्न मल-द्वारों को देखता है। पण्डित यह सब देख शरीर के वास्तविक स्वरूप को समझे।

७०—बुद्धिमान् यह जानकर लार चूसनेवाला न हो—त्यागे हुए भोग पदार्थों का प्रत्याशी फिर से उनकी कामना करनेवाला न हो।

मा तेसु तिरिच्छमप्पाणमावायए

७१—कासङ्कासे खलु अयं पुरिसे बहुमाई

कडेण मूढे, पुणो त करेइ लोहं

वेरं वड्ढेइ अप्पणो

जमिणं परिकहिज्जइ इमस्स चेव
पडिवूहणयाए
अमरायइ महासड्ढी

अट्टमेयं तु पेहाए अपरिण्णाए कंदइ

से त जाणह जमहं बेमि।

वह अपनी भोग विमुख आत्मा को फिर से भोगों में आसक्त न होने दे।

७१—निश्चय ही भोग और कषाय में आसक्त मनुष्य अत्यन्त मायावी होता है।

अपने [redacted] किये से मूढ़ मनुष्य पुनः विषयों का लोभ करता है।

विषयलोभी मनुष्य अपनी आत्मा के प्रति वैर बढ़ाता है।

यह जो बार-बार कहा जाता है वह संयम की वृद्धि के लिए कहा जाता है।

विषयों में अत्यन्त मूढ़ मनुष्य असमान आचरण करता है।

वह बाद में अपने को अर्त-दुःखार्त देख त्राण का मार्ग नहीं जानता हुआ केवल क्रन्दन करता है।

इसलिए जो मैं कहता हूँ सो सुनो।

७२—तेइच्छं पडिए पवयमाणे से हंता छित्ता भित्ता लुपइत्ता विलुपइत्ता उद्दवइत्ता, अकडं करिस्सामित्ति मन्नमाणे

जस्सवि य णं करेइ

अलं बालस्स संगेणं
जे वा से कारइ बाले,

न एवं अणगारस्स जायइ

(श्रु० १ अ० २ उ० ५)

७३—से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय तम्हा पावकम्मं नेव कुज्जा न कारवेज्जा

७२ कई अपने को चिकित्सा में पण्डित कहते हैं। पर वे किसी ने नहीं किया वह कर्म कर देने वाले हुए हनन छेदन भेदन, प्रघातन उत्पीड़न और उपद्रव करते हैं।

ऐसे चिकित्सक जिसकी चिकित्सा करते हैं (उसका बुरा होता है)।

ऐसे मूर्ख की संगत से क्या लाभ ?

जो ऐसे चिकित्सक से चिकित्सा कराता है वह भी मूर्ख है।

सच्चे अनगार की चिकित्सा ऐसे नहीं होती।

७३—यह आदेय को—वीर को—समझ उसमें समुत्थित हुआ है। इसलिए स्वयं पापकर्म न करे और न दूसरे से करावे।

७४—सिया तत्थ एगयरं विप्परामुसइ छसु अन्नयरंमि कप्पइ

७५—सुहट्ठी लालप्पमाणे, सएण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ

७६—सएण विप्पमाएण पुढो वयं पकुव्वइ

७७—जंसिमे पाणा पव्वहिया

७८—पडिलेहाए नो निकरणयाए, एस परिन्ना पवुच्चइ कम्मोवसन्ती

७९—जे ममाइयमइं जहाइ से चयइ

७४—कदाचित् कोई छः में से किसी एक काय का समारम्भ करता है वह छः कायों में से प्रत्येक का आरम्भ करनेवाला माना जाता है।

७५—विषय सुख का अर्थी मनुष्य सावद्य कार्य करता हुआ स्वयंकृत पाप कर्म से मूढ़ बन विपर्यय को प्राप्त होता है।

७६—जीव अपने ही प्रमाद से भिन्न भिन्न जन्म जन्मान्तर करता है।

७७—जिसमें ये प्राणी व्यथित हैं (वह संसार स्वयंकृत ही है।)

७८—यह जानकर मुमुक्षु प्रमाद न करे। इसे ही परिज्ञा—विवेक कहा है और इसी से कर्मोपशान्ति होती है।

७९—जो ममत्व बुद्धि को छोड़ता है वह परिग्रह को

ममाइयं। से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स नत्थि ममाइयं

८०—तं परिन्नाय मेहावी विइत्ता लोगं वंता लोगसन्नं से मइमं परिक्कमिज्जासि त्ति बेमि

८१—नारइं सहई वीरे
वीरे न सहई रतिं
जम्हा अविमणे वीरे
तम्हा वीरे न रज्जइ

८२—सद्दे फासे अहियासमाणे निव्विंद नंदिं इह जीवियस्स

छोड़ता है। जिसके परिग्रह नहीं हैं वही मुनि दृष्टिपथ को—ज्ञानादिक मोक्षपथ को—देखनेवाला है।

८०—यह जानकर मेधावी (ममत्व बुद्धि को छोड़े)। बुद्धिमान लोक के स्वरूप को जान कर तथा लोकसंज्ञा को छोड़कर संयम में पराक्रम करे। यही मैं कहता हूं।

८१—वीर पुरुष संयम में अरति को सहन नहीं करता और न असंयम में रति को सहन करता है। चूंकि वीर पुरुष संयम में अन्यमनस्क नहीं होता अतः असंयम में भी अनुरक्त नहीं होता।

८२—शब्द और स्पर्श को अच्छी तरह सहन करता हुआ मुमुक्षु इस संसार में असंयमजीवन में आनन्द भाव को घृणा की दृष्टि से देखे।

८३—मुणी मोण समायाय, धुणे कम्मसरीरग

८४—पन्त लूह सेवंति, वीरा सम्मत्त-दसिणो

८५—एस ओहंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए त्ति बेमि

८६—दुव्वसुमुणी अणाणाए, तुच्छए गिलाइ वत्तए

(अ० १ उ० २ उ० ६)

८३—मुनि मौन को—असंयम से सम्पूर्ण उदासीन भाव को—ग्रहण कर कर्म शरीर को धुन डाले।

८४—समदर्शी वीर प्रान्त—नीरस और रूक्ष भोजन का सेवन करते हैं।

८५—ऐसे ही मुनि संसार सागर को तिरते हैं। वे ही उत्तीर्ण मुक्त और विरत कहलाते हैं। ऐसा मैं कहता हूं।

८६—अनाज्ञा से चलनेवाला—स्वच्छन्दता से वर्तन करनेवाला—मुनि मोक्ष-गमन के योग्य नहीं होता।

ऐसा तुच्छ मुनि यथार्थ प्ररूपणा करने में हिचकिचाता है।

८७—एस वीरे पसंसिए

अच्चेइ लोयसंजोग

एस नाए पवुच्चइ

८८—ज दुक्ख पवेइय इह माणवाण तस्स
दुक्खस्स कुसला परिन्नमुदाहरन्ति

८९—इइ कम्म परिन्नाय सव्वसो

८७— (जो मुनि आज्ञा के अनुसार वर्तन करता है वह सिद्धान्त की शुद्ध प्ररूपणा करने में नहीं हिचकिचाता।) ऐसा मुनि ही वीर है और वही प्रशंसित है।

मुनि लोकसंयोग को—धन आदि बाह्य और राग द्वेषादि अन्तर ममत्व को—अतिक्रम करता है।

लोकसंयोग का अतिक्रम करना ही न्याय—सन्मार्ग —मुमुक्षुओं का आचार—कहा गया है।

८८—इस संसार में मनुष्यों को जो दुःख कहा गया है कुशल पुरुष उस दुःख को ज्ञ परिज्ञा द्वारा जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञा द्वारा उसका त्याग करते हैं।

८९—यह दुःख स्वकर्मकृत है यह जानकर सर्वदा— करने कराने और अनुमोदन रूप से आस्रव द्वार—दुःख उत्पत्ति के कारण मिथ्यात्व अव्रत प्रमाद, कषाय और योग का निरोध करे।

६०—जे अणन्नदंसी से अणण्णारामे
जे अणण्णारामे से अणन्नदंसी

६१—जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ
जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्स कत्थइ

६२—अवि य हणे अणाइयमाणे

इत्थ पि जाण सेयंति नत्थि

९०—जो अनन्यदर्शी है—जिसकी जिन द्वारा बताए तत्त्वार्थ के सिवाय अन्यत्र दृष्टि नहीं—वह अनन्यारामी है—वह परमार्थ के सिवा अन्यत्र आराम-विश्राम—रमण नहीं करता। जो अनन्यारामी है—परमार्थ के सिवा अन्यत्र आराम नहीं करता—वह अनन्यदर्शी—सम्यक् दृष्टि है।

९१—परमार्थ द्रष्टा जिस प्रकार पुण्यवान् को धर्म का उपदेश देते हैं उसी प्रकार तुच्छ को भी। और जिस प्रकार तुच्छ को धर्म कहते हैं उसी प्रकार पुण्यवान् को भी।

९२—सम्भव है अपने को अनादृत मान कोई साधु को पीटे।

ऐसा भाव उत्पन्न करनेवाली धर्म-कथा में श्रेय नहीं है यह जानो।

६३—नेय पुरिसे क च नए

६४—एस वीरे पससिए, जे बद्धे परिमोयए

६५—उड्ढ अह तिरिय दिसासु
से सव्वओ सव्व परिन्नाचारी
ण लिप्पइ छणपएण वीरे

६६—से मेहावी अणुग्घायणखेयण्णे
जे य बन्धपमुक्ख मन्नेसी

६७—कुसले पुण नो बद्धे नो मुक्के

६८—से ज च आरभे ज च नारभे

९३—यह पुरुष कौन है किसको नमस्कार करता है (यह जान कर उपदेश दो)।

९४—वही वीर है और प्रशंसित है जो कर्मों से बँधे हुए जीवों को मुक्त करता है।

९५—ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक दिशा में जो भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं मुमुक्षु उनके प्रति सर्वकाल में सर्वपरिज्ञाचारी होता है—विशिष्ट ज्ञान और संवरपूर्वक वर्तन करता है। ऐसा वीर हिंसा में लिप्त नहीं होता।

९६—जो पुरुष बन्धन से मुक्त होने का उपाय खोजता है वही मेधावी और कर्मों को विदीर्ण करने में निपुण है।

९७—कुशल पुरुष न तो बद्ध है और न मुक्त ही।

९८—सत्पुरुषों ने जो किया वही साधक करे। उन्होंने जो नहीं किया, साधक भी उसे न करे।

अणारद्ध च न आरभे

६६—छणं छणं परिण्णाय
लोगसन्नं च सव्वसो
(श्रु० १ अ० २ उ० ६)

जो इन्द्रियों द्वारा अनासक्त रहता है उसे मत्सर न करो।

१९—हिंसा और हिंसा के कारणों को सदा त्याग देना [redacted] उत्तम उनका सर्वोत्तम दमन करना [redacted] ।

११—पासिय आउरपाणे अप्पमत्तो
परिव्वए

१२—मता य मइम पास

१३—आरभज दुक्खमिणति णच्चा

१४—माई पमाई पुण एइ गब्भ

१५—उवेहमाणो सद्दरूवेसु उज्जू
माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ

१६—अप्पमत्तो कामेहिं
उवरओ पावकम्मेहिं
वीरे आयगुत्ते खेयन्ने

११—कष्ट से आतुर प्राणियों को देखकर अप्रमत्त हो संयम ग्रहण कर।

१२—हे मतिमान् विचार कर सब देख।

१३—यह सारा दुःख आरम्भज—हिंसात्मक कार्यों से ही उत्पन्न—है यह जानकर उनसे निवृत्त हो।

१४—मायावी और प्रमादी मनुष्य पुनः-पुनः गर्भवास करता है।

१५—शब्द और रूप आदि विषयों में उदासीन सरल और जन्म-मरण से डरनेवाला पुरुष मृत्यु से छुटकारा पा जाता है।

१६—जो शब्द रूपादि कामभोगों में अप्रमादी होता है जो पाप कर्मों से उपरत निवृत्त होता है वही वीर गुप्तात्मा और खेदज्ञ है।

१७—जे पज्जवजायसत्थस्स खेयण्णे-
से असत्थस्स खेयण्णे
जे असत्थस्स खेयण्णे
से पज्जवजाय सत्थस्स खेयण्णे

१८—अकम्मस्स ववहारो न विज्जइ

१९—कम्मुणा उवाही जायइ

२०—कम्म च पडिलेहाए
कम्म मूल च खण पडिलेहिय
सव्व समायाय दोहि अन्तेहि
अदिस्समाण परिक्कमिज्जासि

२१—विइत्तालोग वता लोगसन्नं से मेहावी

(श्र० १ अ० ३ उ० १)

१७—जो मनुष्य विषयों की कामना से उत्पन्न हिंसा को जानता है वह संयम को जानता है। जो संयम को जानता है वह मनुष्य विषयों की कामना से उत्पन्न हिंसा को जानता है।

१८—कर्म रहित जीव के व्यवहार—संसार में जन्म मरणादि का व्यवहार—नहीं होता।

१९—कर्म से ही उपाधि उत्पन्न होती है।

२०—कर्म के स्वरूप को जानकर, कर्म की जड़ हिंसा को जानकर सब उपाय ग्रहण कर दोनों अंतों—राग-द्वेष—से दूर रह मेधावी संयम में पराक्रम करे।

२१—लोक के स्वरूप को जान जो लोक-संज्ञा का परित्याग करते हैं, वे मेधावी हैं।

२२—जाइं च वुड्ढिं च इहऽज्ज पासे,
भूएहिं जाणे पडिलेह सायं ।
तम्हाऽतिविज्जे परमंति णच्चा,
सम्मत्तदंसी न करेइ पावं ॥

२३—उम्मुंच पासं इह मच्चिएहिं,
आरम्भजीवी उभयाणुपस्सी ।
कामेसु गिद्धा निचयं करंति,
संसिच्चमाणा पुनरिंति गब्भं ॥

२४—अवि से हासमासज्ज,
हंता नंदीति मन्नई ।
अलं बालस्स संगेणं,
वेरं वड्ढेइ अप्पणो ॥

२२—हे आर्य ! संसार में जन्म और जरा [redacted] देख। विचार कर जान—सब प्राणियों को सुख प्रिय है। इसीलिए तत्वज्ञ सम्यकदृष्टि परमार्थ को जान पाप कर्म नहीं करता।

२३—इस संसार में मनुष्य के साथ मोह पाश का छेदन कर। गृहस्थ हिंसाजीवी और इस लोक तथा पर लोक में विषय सुखों को कामना करनेवाला होता है। काम-भोग में गृद्ध जीव कर्मों का संचय करते हैं। और जो कर्मों का संचय करते हैं वे बार-बार गर्भावास करते हैं।

२४—पापी मनुष्य हँसी विनोद के वशीभूत हो जीवों का हनन करता है और इसे क्रीड़ा समझ कर आनन्द मानता है। ऐसे अज्ञानी मनुष्य का संसर्ग उचित नहीं। वह केवल अपना [redacted] ही बढ़ाता है।

२५—तम्माऽतिविज्जो परमति णच्चा,
आयङ्कदसी न करेइ पाव।
अग्ग च मूल च विगिंच धीरे,
पलिच्छिंदियाण निकम्मदसी॥

२६—एम मरणा पमुच्चइ

२७—से हु दिट्ठभए मुणी

२८—लोगसी परमदसी विवित्तजीवी
उवसते समिए सहिए सया जये
कालकखी परिव्वए

२५—आतंकदर्शी विद्वान्—पापों से भय खानेवाला तत्त्वज्ञ—परमार्थ को जान कर पाप नहीं करता। हे धीर पुरुष! तू मूलकर्म और अग्र कर्म को आत्मा से विच्छिन्न कर। इस तरह संसार—वृक्ष के मूल और अग्र को छिन्न कर तू निष्कर्मदर्शी—निष्कर्म आत्मा को देखनेवाला—बन।

२६—यह पुरुष—मूलकर्म और अग्रकर्म को छिन्न करनेवाला पुरुष—मरण से मुक्त हो जाता है।

२७—वही मुनि संसार के भय को देखने वाला होता है।

२८—लोक में परमार्थदर्शी, एकान्तसेवी उपशान्त समितियुक्त ज्ञानवान् मुनि संयम में सदा यत्नवान् हो काल की अपेक्षा करता हुआ जीवन वहन करे।

२९—अहं च खलु पाव कम्म पगडं
सच्चंमि धिइं कुव्वहा

३०—एत्थोवरए मेहावी सव्वं पाव कम्म
झोसइ

३१—अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे

३२—से अण्णवहाए अण्णपरियावाए
अण्णं परिग्गहाए जणवयवहाए
जणवयपरियावाए जणवयपरिग्गहाए

३३—से केयण अरिहए पूरित्तए

३४—आसेवित्ता एतमट्ठं इच्चेवेगे समुट्ठिया

२९—निश्चय ही मैंने आसक्तिवश बहुत पाप कर्म किये हैं—ऐसा सोचकर सत्य में धृति कर—दृढ़ हो।

३०—सत्य में रत बुद्धिमान् मनुष्य सर्व पाप कर्मों का क्षय कर देता है।

३१—निश्चय ही मनुष्य बहुचित्तवान् है—वह विविध कामनाएँ करता रहता है।

३२—इन दुष्पूर कामनाओं की पूर्ति के लिये वह दूसरों को मारने दूसरों को दुःख दे उन्हें अपने अधीन करने जनपदों को मारने जनपदों को परिताप दे और जनपदों को अपने अधीन करने के लिए तैयार रहता है।

३३—जो इस चित्त की कामनाओं को पूर्ण करने की इच्छा करता है वह चलनी को जल से भरना चाहता है।

३४—इन सब भोग्य वस्तुओं का आसेवन करनेवाले

तम्हा त विइय नो सेवे निस्सार पासिय नाणी

३५—उववाय चवण णच्चा,
अणण्ण चर माहणे।

३६—से न छणे, न छणावए, छणन नाणुजाणइ।

३७—निव्विद नदिं, अरए पयासु

३८—अणोमदसी
निसण्णे पावेहिं कम्मेहिं।

३९—कोहाइमाण हणिया य वीरे।
लोभस्स पासे निरय महन्त,

भी कई उन्हें छोड़ संयम के लिए उद्यत हुए हैं। अत ज्ञानी उन्हें निस्सार देख उनका दूसरी बार सेवन न करे।

३५—अन्य प्राणियों की तो बात ही क्या, देवों तक के उपपात और च्यवन—जन्म और मरण—जान कर मुनि! अनन्य में—संयम में—विचरण कर।

३६—मुमुक्षु किसी जीव की हिंसा न करे न करावे और न हिंसा करते हुए का अनुमोदन करे।

३७—विषयानन्द से घृणा कर। स्त्रियों में आसक्त मत हो।

३८—मुमुक्षु उच्चदर्शी हो और पाप कर्मों से विरत हो।

३९—वीर पुरुष अति क्रोध और मान का हनन करे। वह लोभ का फल महान् नरक देखे। अत वीर

तम्हा य वीरे विरए वहाए,
छिंदिज्ज सोय लहुभूयगामी ॥

४०—गथ परिण्णाय इहऽज्ज ! धीरे,
सोय परिण्णाय चरिज्ज दंते ।
उम्मज्ज लद्धु इह माणवेहिं,
नो पाणिणं पाणे समारभिज्जासि ॥
(श्रु० १ अ० ३ उ० २)

४१—संधि लोयस्स जाणित्ता

४२—आयओ बहिया पास
तम्हा न हंता न विघायए

पुरुष पाप का फल देख वृत्तियों से हलका बन वध—हिंसा से विरत हो और कर्म-स्रोत का छेद कर डाले।

४०—धीर पुरुष ग्रन्थि और स्रोत—संसार प्रवाह—के स्वरूप को जानकर आज ही से इन्द्रिय-दमन करता हुआ विचरे। उन्मज्जन प्राप्त कर धीर पुरुष को इस मनुष्य जीवन में प्राणियों के प्राणों का समारम्भ—हनन—नहीं करना चाहिए।

४१—मनुष्य नर-भव को अवसर जानकर (प्रमाद न करे)।

४२—दूसरे प्राणियों को आत्मतुल्य देख।

अतः किसी भी प्राणी की हिंसा न कर, न दूसरे से करा।

४३—जमिणं अन्नमन्नवितिगिच्छाए
पडिलेहाए न करेइ पावं कम्मं
किं तत्थ मुणी कारणं सिया ?

४४—समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसायए

४५—अणन्नपरमं नाणी, नो पमाए
कयाइवि

४६—आयगुत्ते सया वीरे, जायामायाइ
जावए

४७—विरागं रूवेहिं गच्छिज्जा
महया खुड्डएहिं य

न आगति को जान कर जिसने दोनों ही
ग और द्वेष—को छोड़ दिया है वह सारे लोक
द्वारा छिन्न नहीं होता विद्ध नहीं होता दग्ध
ता और न निहत होता है।

२—इस जीव का अतीत क्या था? इसका भविष्य
—इस भूत और भविष्य का कितने ही विचार
नहीं करते।

कितने ही कहते हैं इस संसार में जीव का जो
तीत था वही भविष्य है।

तथागत अतीतार्थ को—अतीत के अनुसार भविष्य होने की बात को या भविष्यार्थ को—भविष्य के अनुसार अतीत होने की बात को स्वीकार नहीं करते। अतीत या भविष्य कर्मों के अनुसार [redacted] होता है यह जान कर पवित्र आचरणयुक्त महर्षि कर्मों को धुन कर क्षय कर डाले।

४८—आगइ गइं परिण्णाय दोहिंवि
अंतेहिं आदिस्समाणेहिं से न
छिज्जइ, न भिज्जइ, न डज्झइ, न
हम्मइ कंचणं सव्वलोए

४९—अवरेण पुव्विं न सरंति एगे,
किमस्स तीयं ? किं वा आगमिस्सं ?
भासंति एगे इह माणवाओ,
जमस्स तीयं तमागमिस्सं ॥
नाईयमट्ठं न य आगमिस्सं,
अट्ठं नियच्छंति तहागया उ।
विहूयकप्पे एयाणुपस्सी,
निज्झोसइत्ता खवगे महेसी ॥

४८—गति आगति को जान कर जिसने दोनों ही अन्तों—राग और द्वेष—को छोड़ दिया है वह सारे लोक में किसी के द्वारा छिन्न नहीं होता विद्ध नहीं होता दग्ध नहीं होता और न निहत होता है।

४९—इस जीव का अतीत क्या था? इसका भविष्य क्या है—इस भूत और भविष्य का कितने ही विचार ही नहीं करते।

कितने ही कहते हैं इस संसार में जीव का जो अतीत था वही भविष्य है।

तथागत अतीतार्थ को—अतीत के अनुसार भविष्य होने की बात को या भविष्यार्थ को—भविष्य के अनुसार अतीत होने की बात को स्वीकार नहीं करते। अतीत या भविष्य कर्मों के अनुसार ही होता है यह जान कर पवित्र आचरणयुक्त महर्षि कर्मों को धुन कर क्षय कर डाले।

५५—पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ।

५६—सहिओ धम्ममायाय सेयं समणुपस्सइ

५७—दुहओ जीवियस्स परिवंदणमाणण पूयणाए जंसि एगे पमायंति

५८—सहिओ दुक्खमत्ताए पुट्ठो नो झंझाए।

५५—हे पुरुष! सत्य को ही अच्छी तरह जान। जो सत्य की आज्ञा में उपस्थित होता है—जो सत्य की आराधना में उद्यमी होता है वह मेधावी मार—मृत्यु को तर जाता है।

५६—सत्य से युक्त पुरुष धर्म को ग्रहण कर श्रेय को अच्छी तरह देखता है।

५७—राग और द्वेष वश मनुष्य इस जीवन के लिए एवं प्रशंसा सम्मान और पूजा पाने के लिए पाप कर्म करता है और ऐसा करने में कितने ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

५८—सत्य युक्त मुमुक्षु किसी भी दुःख से स्पृष्ट होने पर न घबराये।

जे अणासवा ते अपरिस्सवा
जे अपरिस्सवा ते अणासवा
एए पए संबुज्झमाणे
लोयं च आणाए अभिसमिच्चा
पुढो पवेइयं

६—आघाइ नाणी इह माणवाणं संसार-
पडिवण्णाणं संबुज्झमाणाणं विन्नाण-
पत्ताणं

१०—अट्टावि संता अदुवा पमत्ता

वाले हैं। जो परिस्रव हैं—कर्म-प्रवेश को रोकने के उपाय हैं वे ही (उन्मुक्त अवस्था में) आस्रव हैं—कर्म प्रवेश के द्वार हैं। जो अनास्रव हैं—कर्म प्रवेश के कारण नहीं हैं वे भी (अपनाये बिना) संवर—कर्म प्रवेश के रोकनेवाले—नहीं होते। जो आस्रव—कर्म प्रवेश के कारण हैं—वे ही (रोकने पर) अनास्रव होते हैं।

पृथक् पृथक् प्रवेदित [redacted] पदों को समझनेवाला लोक को तीर्थंकर की आज्ञा से जान कर आस्रव से निवृत्त हो और संवर में प्रवृत्ति करे।

९—ज्ञानी पुरुष संसारी होने पर भी जो मनुष्य संबुद्ध और विज्ञान प्राप्त—विवेकशील होते हैं, उन्हें यह धर्म कहते हैं।

१०—हे आर्त्त और प्रमादी मनुष्यो! मैं तुम्हें यथार्थ

अहासच्चमिण तिबेमि
नाणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि
इच्छापणीया वकानिकेया
कालगहीया निचयनिविट्ठा
पुढो पुढो जाइ पकप्पयति

११—इहमेगेसि तत्थ तत्थ सथवो भवइ
अहोववाइए फासे पडिसवेयति
चिट्ठ कम्मेहि कूरेहि चिट्ठ
परिचिट्ठइ अचिट्ठ कूरेहि कम्मेहि
नो चिट्ठ परिचिट्ठइ

सच्ची बात कहता हूँ। मृत्यु के मुह में पड़े [redacted] प्राणी को मृत्यु न आये ऐसा नहीं हो सकता। जो वासनाओं के वश [redacted] असयम के निवास हैं कालगृहीत हैं—समय समय पर पश्चात्पद हैं और जो रात दिन संग्रह करने में लिप्त हैं वे भिन्न भिन्न जातियों में—जीव-योनियों में जन्म-जन्मान्तर करते हैं।

११—जगत् में कितने ही लोगों को मानो नरकादि से गाढ़ परिचय-सा होता है। वे बार-बार पाप कर्म कर नरक पशु आदि योनियों में होनेवाले स्पर्शों—दुःखों का प्रतिसंवेदन करते रहते हैं।

अत्यन्त क्रूर कर्म से प्राणी अत्यन्त वेदनावाली योनि में उत्पन्न होता है। जो अत्यन्त क्रूर कर्म नहीं करता वह उतनी वेदनावाली योनि में नहीं जाता।

१२—एगे वयति अदुवावि नाणी
नाणी वयति अदुवावि एगे

१३—आवंति केयावंती लोयंसि समणा य माहणा य पुढो विवायं वयंति से दिट्ठं च णे सुयं च णे मयं च णे विण्णायं च णे उड्ढं अह तिरियं दिसासु सव्वओ सुपडिलेहियं च णे—सव्वे पाणा सव्वे जीवा सव्वे भूया सव्वे सत्ता हन्तव्वा अज्जावेयव्वा परियावेयव्वा परिघेत्तव्वा उद्दवेयव्वा, इत्थंवि जाणह नत्थित्थ दोसो अणारियवयणमेयं

१२—जो श्रुतकेवली कहते हैं वह ही केवलज्ञानी कहते हैं। जो केवलज्ञानी कहते हैं वही श्रुतकेवली कहते हैं।

१३—इस संसार में अनेक श्रमण ब्राह्मण भिन्न ही तर्क वितर्क करते हुए कहते हैं—"हमने देखा सुना, मनन किया विशेष भाव से जाना और ऊर्ध्व अधो व तिर्यक् दिशा में सब प्रकार से पर्यालोचना की है कि किसी भी प्राणी किसी भी जीव किसी भी भूत किसी भी सत्त्व को मारने उस पर हुकूमत करने उसे संताप देने उसे दासदासी रूप में अधीन रखने और उसके प्रति उपद्रव करने में कोई दोष नहीं है - यह तुम जानो।'

पर यह अनार्यों का कथन है।

पुव्व निकाय समयं पत्तेय पत्तेय पुच्छिस्सामि, हंभो पवाइया ! किं भे सायं दुक्खं असायं ? समिया पडिवण्णे यावि एव बूया— सव्वेसिं पाणाण सव्वेसिं भूयाण सव्वेसिं जीवाण सव्वेसिं सत्ताण असायं अपरिनिव्वाण महब्भय दुक्ख त्ति बेमि

तत्थ जे आरिया ते एव वयासी —से दुद्दिट्ठ च भे दुस्सुय च भे दुम्मय च भे दुव्विण्णाय च भे उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ दुप्पडिलेहिय च भे, ज ण तुब्भे

पहले भिन्न-भिन्न [illegible]
करता हूँ—"हे वादियो [illegible]
अप्रिय है या अप्रत्य [illegible]
उत्तर देने पर—अर्थात् [illegible]
नहीं है उनके ऐसा [illegible]
ही तरह सर्व प्राणी [illegible]
की असाता—दुःख [illegible]
कारण और पीड़ा [illegible]

जो अर्य हैं [illegible]
"यह तुमने [illegible]
किया विशेष [illegible]
तिर्यक दिशा में [illegible]
बोलते, प्रज्ञापित [illegible]

एवमाइक्खह एवं भासह एव परूवेह एव पण्णवेह—सव्वे पाणा सव्वे जीवा सव्वे भूया सव्वे सत्ता हन्तव्वा अज्जावेयव्वा परियावेयव्वा परिघेत्तव्वा उद्दवेयव्वा। इत्थवि जाणह नत्थित्थ दोसो, अणारियवयणमेय

वय पुण एवमाइक्खामो एव भासामो एव परूवेमो एव पण्णवेमो—सव्वे पाणा सव्वे जीवा सव्वे भूया सव्वे सत्ता न हतव्वा न अज्जावेयव्वा न परिघित्तव्वा

भी प्राणी जीव भूत और सत्त्व को मारने उस पर हुकूमत करने उसे परिताप देने उसे दास-दासी रूप से ग्रहण करने और उसे उपद्रव करने में दोष नहीं है ऐसा जानो। ऐसा तुम्हारा कहना अनार्य वचन है।"

"हम तो ऐसा कहते ऐसा बोलते ऐसा प्रज्ञापित करते और ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि किसी भी प्राणी किसी भी जीव किसी भी भूत और किसी भी सत्त्व को नहीं मारना चाहिए उस पर हुकूमत नहीं करनी चाहिए, उसे परिताप नहीं देना चाहिए, उसे दासदासी रूप से

न परियावेयव्वा न उद्दवेयव्वा
इत्थवि जाणह नत्थित्थ दोसो
आयरियवयणमेय

(श्रु० १ अ० [illegible] उ० २)

१४—उवेहि ण वहिया य लोग से
सव्वलोगमि जे केइ विण्णू
अणुवीइ पास निक्खित्तदडा
जे केइ सत्ता पलिय चयति
नरा मुयच्चा धम्मविउत्ति अजू
आरभज दुक्खमिणति णच्चा
एवमाहु सम्मत्तदसिणो

अधीन नहीं करना चाहिए और न उसके प्रति उपद्रव करना चाहिये। इसी में दोष नहीं है ऐसा जानो।

ऐसा कहना—आर्य वचन है।

१४—जो लोग धर्म से बाहर हैं—धर्म में विपरीत बुद्धि रखते हैं—उनके प्रति उपेक्षा भाव—मध्यस्थ भाव रखो। जो कोई विरोधियों के प्रति उपेक्षा भाव रखता है वह सब लोक में विद्वान् है।

जो भी प्राणी कर्म को छोड़ते—छोड़ने में समर्थ होते हैं विचार कर देख वे सब निक्षिप्तदण्ड—मन वचन काया से हिंसा को छोड़ने वाले हैं।

जो नर मृतार्चा—शरीर शुश्रूषा के प्रति मृतवत् धर्मविद और सरल हैं वे इस दुःख को आरम्भ—हिंसा—से उत्पन्न जान कर उसे छोड़ते हैं।

सम्यक्त्वदर्शी तत्त्वज्ञ ऐसा कहते हैं।

१५—ते सव्वे पावाइया
दुक्खस्स कुसला
परिण्णमुदाहरंति
इय कम्म परिण्णाय सव्वसो

१६—इह आणाकंखी पंडिए अणिहे
एगमप्पाणं सपेहाए धुणे सरीरं

१७—कसेहि अप्पाणं
जरेहि अप्पाणं

१८—जहा जुन्नाइं कट्ठाइं
हव्ववाहो पमत्थइ
एवं अत्तसमाहिए अणिहे
विगिंच कोहं अविकंपमाणे

१५—दुःख को समझने में कुशल वे सब प्रवादी—तत्त्वदर्शी—इस कर्म को सर्वश—सब तरह से जानकर उसके क्षय की परिज्ञा—बुद्धि—बतलाते हैं।

१६—आज्ञा आराधना का आकांक्षी पण्डित पुरुष आत्मा को अकेला समझ—शरीर से भिन्न समझ—अमोह भाव से शरीर को तप से क्षीण करे।

१७—अपनी आत्मा को कृश करो—पतली करो। अपनी आत्मा को जीर्ण करो—शुष्क करो।

१८—जिस तरह अग्नि पुराने सूखे लकड़ों को शीघ्र जलाती है उसी तरह आत्मसमाहित—राग रहित और क्रोध को छोड़ कर स्थिर बने—जीव के कर्म शीघ्र नाश को प्राप्त होते हैं।

१६—इम निरुद्धाउय संपेहाए
दुक्खं च जाण अदु आगमेस्सं
पुढो फासाइं च फासे
लोयं च पास विफंदमाणं

२०—जे निव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं
अणियाणा ते वियाहिया

२१—तम्हा अतिविज्जो नो
पडिसंजलिज्जासित्ति बेमि
(श्रु० १ अ० ४ उ० ३)

२२—आवीलए पवीलए निप्पीलए
जहित्ता पुव्वसंजोगं हिच्चा उवसमं

१९—इस मनुष्य-भव को अल्प आयुष्यवाला समझ कर, क्रोधादि तत्काल दुःखों के कारण हैं अथवा भविष्य में पापी जीव भिन्न भिन्न स्थानों में दुःखों का स्पर्श करते हैं तथा सारा लोक दुःख से छटपटा रहा है यह देख कर क्रोधादि पापों का परित्याग कर।

२०—उपरोक्त बातें समझ कर जान कर देख कर जो पाप कर्मों से निवृत्त हैं वे अनिदान—सांसारिक सुख की कामना से दूर—परम सुखी कहे गये हैं।

२१—इसलिए अत्यन्त विद्वान् पुरुष क्रोधादि से आत्मा को संज्वलित न करे—न जलाये।

ऐसा मैं कहता हूँ।

२२—सारे पूर्व संयोगों को त्याग एवं इन्द्रिय जय रूप उपशम भाव को प्राप्त कर, आपीड़ित कर निष्पीड़ित कर—तप से आत्मा को उत्तरोत्तर तपा।

२३—तम्हा अविमणे वीरे
सारए समिए सहिए सया जए
दुरणुचरो मग्गो वीराण
अनियट्टगामीण विगिंच
मंससोणियं

२४—एस पुरिसे दविए वीरे
आयाणिज्जे वियाहिए
जे धुणाइ समुस्सयं
वसित्ता बंभचेरंसि

२५—नित्तेहिं पलिच्छिन्नेहिं
आयाणसोयगढिए बाले
अव्वोच्छिन्नबंधणे

२३—मुक्तिगामी वीर पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करना बड़ा कठिन है, अतएव मांस और शोणित को सुखा कर वीर पुरुष मन की अरति को हटा संयम में रत हो समितियों से युक्त रह विवेक सहित सदा इस मार्ग पर यत्न करता रहे।

२४—जो ब्रह्मचर्य में वास करता हुआ कर्मों को धुनता है वही वीर पुरुष संयमी और अनुकरणीय कहा जाता है।

२५—नेत्रादि इन्द्रियों के भोग्य पदार्थों से [redacted] होकर भी जो मूर्ख विषय स्रोत में गृद्ध—प्रवाहित होता है [redacted] वास्तव में छिन्नबंधन नहीं होता। वह संयोगों को पार

अणभिक्कतसंजोए
तमसि अवियाणओ
आणाए लम्भो नत्थि त्ति बेमि

२६—जस्स नत्थि पुरा पच्छा
मज्झे तस्स कुओ सिया ?

२७—सेहु पन्नाणमंते बुद्धे
आरंभोवरए
सम्ममेयति पासह
जेण बंधं वहं घोरं
परियावं च दारुणं

२८—पलिछिंदिय बाहिरगं च सोयं
निक्कम्मदंसी इह मच्चिएहिं

नहीं कर सका है और अज्ञान से अंधकार में निमग्न है। ऐसे मनुष्य को भगवान् की आज्ञा का लाभ नहीं होता। ऐसा मैं कहता हूँ।

२६—जिसके पूर्व में और पश्चात् में नहीं है उसके मध्य में कहाँसे होगा ?

२७—जो आरम्भ—हिंसा-कार्यसे उपरत है—अलग है—वही प्रज्ञानी और बुद्ध है।

जिस आरम्भ से बन्धन घोर वध और दारुण परिताप का भागी होना पड़ता है देख। उससे उपरत होना ही सम्यक् कार्य है।

२८—इस मृत्युलोक में जो निष्कर्मदर्शी—मोक्षाकांक्षी और वेदविद्—तत्वज्ञ होता है वह बाह्यस्रोत (हिंसादि)

कम्माण सफलं दट्ठूण
तओ निज्जाइ वेयवी

२९—जे खलु भो! वीरा समिया सहिया
सया जया संघडदंसिणो
आओवरया अहातहं लोयं
उवेहमाणा पाईणं पडिणं
दाहिणं उईणं इय सच्चंसि
परिचिट्ठिंसु

३०—साहिस्सामो नाणं वीराणं,
समियाणं सहियाणं सया
जयाणं संघडदंसीणं आओवरयाणं
अहातहं लोयं समुवेहमाणाणं

और अभ्यन्तरस्रोत (राग द्वेषादि) का छेदन कर किये हुए कर्मों को सफल देख पापों से निकल जाता है।

२९—हे साधक ! निश्चय ही जो पुरुष वीर क्रिया में समित—सावचेत विवेक सहित सदा यत्नवान् दृढ़दर्शी पापकर्म से निवृत्त और लोक को यथार्थरूप से देखनेवाले हैं वे पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर— सारी दिशाओं में सत्य में प्रतिष्ठित होते हैं।

३०—जो वीर हैं क्रियाओं में संयत हैं विवेक सहित हैं सदा यत्नवान् हैं दृढ़दर्शी हैं पापकर्म से निवृत्त हैं और लोक को यथार्थ रूप से देखने वाले हैं उनके ज्ञान—अनुभव—को कहता हूँ।

अविज्जाए पलिमुक्खमाहु
आवट्टमेव अणुपरियट्ट ति
त्ति बेमि

(श्रु० १ अ० ५ उ० १)

६—आवन्ती केयावन्ती लोयसि अणारम्भजीवी एएसु चेव अणारम्भजीवी

१०—एत्थोवरए त झोसमाणे
अय सधीति अद्क्खू

११—एस मग्गे आरिएहिं पवेइए
उट्ठिए नो पमायए
जाणित्तु दुक्ख पत्तेय साय

और अविद्या से मोक्ष कहते हैं वे आवर्त—संसार चक्र—में ही अनुपरिवर्तन—बार-बार भ्रमण—करते हैं।

९—लोक में जो भी अनारम्भ-जीवी हैं वे छ प्रकार के जीवों के प्रति आरम्भ नहीं करते हुए जीवन यापन करते हैं।

१०—वह आरम्भ से उपरत हो कर्मों का क्षय करता रहता है।

वह देखता है कि यही संधि—अवसर—है।

११—यह मार्ग आर्यों ने कहा है

दुःख और सुख के विभिन्न रूपों को जानकर संयम में उत्थित हो प्रमाद न कर।

१२—पुढोच्छंदा इह माणवा
पुढो दुक्खं पवेइयं

१३—से अविहिंसमाणे अणवयमाणे
पुट्ठो फासे विप्पणुन्नए

१४—एस समिया परियाए वियाहिए

१५—जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं उदाहु ते
आयंका फुसंति, इति उदाहु धीरे
ते फासे पुट्ठो अहियासइ

१२—संसार में मानव पृथक पृथक् अभिप्राय वाले होते है।

दुःख भी प्रत्येक का भिन्न भिन्न कहा गया है।

१३- वह हिंसा न करता हुआ झूठ न बोलता हुआ रहे।

परिषहों से स्पर्शित होने पर उन्हें समभाव से सहन करे।

१४—ऐसा संयमी ही उत्तम पर्यायवाला—उत्तम चारित्रशील कहा गया है।

१५—जो पापकर्मों में आसक्त नहीं है उन्हें भी कदाचित् आतंक स्पर्श करते है। उन स्पर्शों से स्पृष्ट होने पर उन्हें पूर्व कर्मों का फल जान समभाव से सहन करे। धीर पुरुषों ने ऐसा ही कहा है।

१६—पासह एय रूवसंधि समुप्पेहमाणस्स इकायणरयस्स इह विप्पमुक्कस्स नत्थि मग्गे विरयस्स त्ति बेमि

(श्रु० १ अ० ५ उ० २)

१७—आवती केयावती लोगंसि परिग्गहावती, से अप्प वा बहु वा अणु वा थूल वा चित्तमंत वा अचित्तमंत वा एएसु चेव परिग्गहावती

१८—एतदेव एगेसिं महाभ्भय भवइ

१६—लोगवित्त च ण उवेहाए एए सगेअवियाणओ

१६ – देख—देह के स्वरूप को इस प्रकार देखनेवाले और आत्मा के गुणों में रमण करनेवाले विप्रमुक्त और विरक्त के लिए भव भ्रमण का मार्ग खुला नहीं रहता।

१७—इस लोक में जो परिग्रही हैं वे अल्प हो या बहुत अणु हो या स्थूल सचित्त हो या अचित्त सभी वस्तुओं का परिग्रह करते हैं।

१८—यह परिग्रह ही एक-एक परिग्रहिको के महाभय का हेतु है।

१९—लोकवित्त—परिग्रह—के स्वरूप का चिंतन कर। इससे दूर रहनेवाले को कोई भय नहीं होता।

२०—से सुपडिबद्ध सूवणीयति नच्चा
पुरिसा परमचक्खू विपरिक्कमा

२१—एएसु चेव बभचेर त्ति बेमि

२२—से सुय च मे अज्झत्थय च मे—बधप-
मुक्खो अज्झत्थेव

२३—एत्थ विरए अणगारे दीहराय-
तितिक्खए

२४—पमत्ते बहिया पास
अप्पमत्तो परिव्वए

२०—जो निष्परिग्रही है वह सुप्रतिबद्ध है, सु उपनीत है। यह जानकर हे पुरुष! परम चक्षुवाला हो संयम में पराक्रम कर।

२१—ऐसे साधकों में ही ब्रह्मचर्य होता है—ऐसा मैं कहता हूँ।

२२—मैंने सुना है और अनुभव भी किया है कि बन्ध और मोक्ष आत्मा ही है।

२३—इस परिग्रह से विरत अनगार यावज्जीवन तितिक्षाभाव रखे।

२४—प्रमत्त को धर्म से बाहर देख अप्रमत्त भाव से संयम में विचरण कर।

२५—एय मोण सम्म अणुवासिज्जासि त्ति बेमि

(श्रु० १ अ० ५ उ० २)

२६—आयती केयावती लोयसि अपरिग्गहावती एएसु चेव अपरिग्गहावती

२७—सुधा वई मेहावी पडियाण निसामिया

२८—समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए

२९—जहित्थ मए सधी झोसिए एवमन्नत्थ सधी दुज्झोसए भवइ तम्हा बेमि नो निहणिज्ज वीरिय

२५—इस मौन का अच्छी तरह पालन कर—ऐसा मैं कहता हूँ।

२६—लोक में जो अपरिग्रही हैं वे (अल्प या बहु अणु या स्थूल सचित्त या अचित्त किसी वस्तु का परिग्रह नहीं करते।

२७—मेधावी पुरुष आप्तवाणी को सुन अथवा पण्डितों की वाणी को सुन (परिग्रह का त्याग करे)।

२८—आर्यों ने समता में धर्म कहा है।

२९—जिस प्रकार यहाँ मैंने कर्मों की संधि को क्षीण किया है उसी प्रकार अन्यत्र कर्म-सन्धि का क्षीण होना कठिन है।

अतः कहता हूँ अपने वीर्य का गोपन न कर।

३६—न इम मक्क सिढिलेहिं अदिज्ज-
माणेहिं गुणसाएहिं वकसमायारेहिं
पमत्तेहिं गारमावसतेहिं

४०—मुणी मोण समायाए धुण सरीरग
पत लूह सेवन्ति वीरा सम्मत्तदसिणो
एस ओहन्तरे मुणी, तिण्णे मुत्ते
विरए वियाहिए त्तिबेमि
(श्रु० १ अ० ५ उ० ३)

४१—गामाणुगाम दूइज्जमाणस्स दुज्जाय
दुप्परक्कत भवइ अवियत्तस्स
भिक्खुणो

३९—शिथिल, आर्द्र विषयास्वादी वक्राचारी प्रमत्त और घर में रहनेवाले मनुष्यों द्वारा यह शक्य नहीं है।

४०—मुनि मौन को धारणकर शरीर को धुने—कृश करे। सम्यक्त्वदर्शी वीर प्रांत और रूक्ष आहार का सेवन करते हैं।

संसार समुद्र को तिरनेवाला ऐसा मुनि ही तीर्ण मुक्त तथा विरक्त कहा गया है—ऐसा मैं कहता हूं।

४१—ग्रामानुग्राम में अकेले विचरते हुए अव्यक्त भिक्षु का विहार दुर्यात और दुष्पराक्रान्त होता है।

३६—न इम सक्क सिढिलेहिं अद्दिज्ज-
माणेहिं गुणासाएहिं वकसमायारेहिं
पमत्तेहिं गारमावसंतेहिं

४०—मुणी मोण समायाए धुणे सरीरग
पत लूह सेवति वीरा सम्मत्तदंसिणो
एस ओहन्तरे मुणी, तिण्णे मुत्ते
विरए वियाहिए त्तिबेमि

(श्रु० १ अ० ५ उ० ३)

४१—गामाणुगाम दूइज्जमाणस्स दुज्जाय
दुप्परक्कत भवइ अवियत्तस्स
भिक्खुणो

३९—शिथिल, आर्द्र विपयास्वादी वक्राचारी प्रमत्त और घर में रहनेवाले मनुष्यों द्वारा यह शक्य नहीं है।

४०—मुनि मौन को धारणकर शरीर को धुने—कृश करे। सम्यक्त्वदर्शी वीर प्रांत और रूक्ष आहार का सेवन करते हैं।

संसार समुद्र को तिरनेवाला ऐसा मुनि ही तीर्ण मुक्त तथा विरक्त कहा गया है—ऐसा मैं कहता हूँ।

४१—ग्रामानुग्राम में अकेले विचरते हुए अव्यक्त भिक्षु का विहार दुर्यात और दुष्पराक्रान्त होता है।

४२—वयसावि एगे बुइया कुप्पंति
माणवा

४३—उन्नयमाणे य नरे महया मोहेण
मुज्झइ

४४—संबाहा बहवे भुज्जो भुज्जो
दुरइक्कम्मा अजाणओ अपासओ

४५—एयं ते मा होउ
एयं कुसलस्स दंसणं

४६—तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे
तस्सन्नी तन्निवेसणे

४२—कई मनुष्य वचन मात्र से कुपित हो जाते हैं।

४३—अभिमानी मनुष्य महामोह से विवेक शून्य होता है।

४४—अज्ञानी और मोहान्ध मनुष्य के सामने बार बार अनेक दुरतिक्रम बाधाएँ उपस्थित होती हैं।

४५—ऐसा तुम्हें न हो
यह ज्ञानी की दृष्टि है।

४६—शिष्य तद्‌दृष्टि हो—गुरु की दृष्टि से चले। उसकी निस्संगता का अनुसरण करे। उसे अग्रसर रखे। उसमें पूर्ण श्रद्धा रखे। उसके पास रहे।

४७—जय विहारी चित्तनिवाई पंथ निज्झाई पलियाहिरे पासिय पाणे गच्छिज्जा

४८—से अभिक्कममाणे पडिक्कममाणे संकुचमाणे पसारेमाणे विणिवट्टमाणे संपलिज्जमाणे

४९—एगया गुणसमियस्स रीयओ काय-संफास समणुचिन्ना एगतिया पाणा उद्दायंति इहलोग वेयण विज्जावडिय

जं आउट्टिकय कम्म तं

४७—वह यतनापूर्वक विहार करे। चलते समय उसमें ही चित्त रखे। वह पथ पर दृष्टि रखता हुआ प्राणियों को देखता—टालता—हुआ चले।

४८—वह जाना आना संकोच प्रसार विनिवर्तन प्रमार्जनादि कार्य यतना से करे।

४९—यदि कभी गुण और समितियों से युक्त संयमी की गमन आदि क्रिया के द्वारा काया-स्पर्श के कारण कोई प्राणी आहत या व्यथा जानेवाला प्राप्त होता है तो कर्म इसी भव में अनुभव होकर क्षय हो जाता है।

यदि कर्म आकुट्टि पूर्वक—संकल्प पूर्वक किया हुआ हो तो उसे जानकर प्रायश्चित्त द्वारा दूर करना चाहिए।

परिन्नाय विवेगमेइ, एव से
अप्पमाएण विवेग किट्टइ वेयवी

४०—से पभूयदंसी पभूयपरिन्नाणे उवसंते
समिए सहिए सयाजए, दट्ठु
विप्पडिवेएइ अप्पाण किमेस जणो
करिस्सइ ? एस से परमारामो
जाओ लोगमि इत्थीओ मुणिणा
हु एय पवेइय

४१—उब्बाहिज्जमाणे गामधम्मेहिं अवि
निब्बलासए अवि ओमोयरियं
कुज्जा अवि उड्ढं ठाणं ठाइज्जा
अवि गामाणुगाम दुइज्जिज्जा अवि

इस प्रकार अप्रमाद पूर्वक विचरण [illegible] गुण कीर्तन करते हैं।

५०—वह [illegible] गुणवान सदा यतनावान स्त्री [illegible] करे—यह मेरा [illegible] में स्त्रियाँ परमाराम—[illegible] ने ऐसा कहा है।

५१—कदाचित् [illegible] पीड़ित हो तो [illegible] आहार की मात्रा [illegible]

आहार वुच्छिदिज्जा अवि चए
इत्थीसु मण

५२—पुव्व दण्डा पच्छा फासा पुव्व फासा
पच्छा दण्डा इच्चेए कलहासगकरा
भवति पडिलेहाए आगमित्ता
आणविज्जा अणासेवणाए त्ति बेमि

५३—से नो काहिए नो पासणिए
नो मामए नो कय किरिए
वइगुत्ते अज्झप्प सवुडे परिवज्जइ
सयापाव एय मोण समणुवासि-
ज्जासि त्ति बेमि

(श्रु० १ अ ५ उ० ४)

एक ग्राम से दूसरे ग्राम चला जाय। आहार का सर्वथा विच्छेद कर दे। स्त्री में मन को न लगावे।

५२—पहले दण्ड है पीछे स्पर्श—भोग। पहले स्पर्श—भोग है पीछे दण्ड। ये भोग क्लेश और मोह के हेतु हैं। इसे अच्छी तरह देख—जान—आत्मा को भोग सेवन से दूर रहने की शिक्षा दे। ऐसा मैं कहता हूँ।

५३—वह स्त्री कथा न करे, स्त्रियों की ओर न ताके उनके साथ एकांत वास न करे, उनके प्रति ममत्व न करे। उनके चित्त को आकर्षित करने के लिए साज सज्जा न करे। वह वचन से गुप्त रह, आत्मा को संवृत रख पापकर्म से सदा दूर रहे। वह इस तरह मौन—ब्रह्मचर्य की उपासना करे। ऐसा मैं कहता हूँ।

५४—वितिगिच्छसमावन्नेण अप्पाणेण
नो लहइ समाहिं

५५—तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं
पवेइयं

५६—सिया वेगे अणुगच्छंति
असिता वेगे अणुगच्छंति
अणुगच्छमाणेहिं अणणुगच्छमाणे
कहं न निव्विज्जे ?

५७—सड्ढिस्स णं समणुन्नस्स संपव्वय-
माणस्स समियंति मन्नमाणस्स
एगया समिया होइ

५४—संशय-ग्रस्त आत्मा द्वारा समाधि प्राप्त नहीं की जा सकती।

५५—वही सत्य है निःशंक है जो जिनों द्वारा प्रवेदित है—कथित है।

५६—कई गृहस्थ दृष्टि का अनुसरण करते हैं। कई गृहत्यागी भी दृष्टि का अनुसरण करते हैं। अनुसरण न करनेवाला, अनुसरण करनेवालों के बीच रह कैसे निर्वेद को प्राप्त करेगा?

५७—श्रद्धालु और अच्छी तरह प्रव्रजित होने वाले समझदार पुरुष के "समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है" ऐसी श्रद्धा होती है।

समियति मन्नमाणस्स एगया
असमिया होइ
असमियति मन्नमाणस्स एगया
समिया होइ
असमियंति मन्नमाणस्स एगया
असमिया होइ
समियति मन्नमाणस्स समिया
वा असमिया वा समिआ होइ
उवेहाए
असमियति मन्नमाणस्स समिया
वा असमिया वा असमिया होइ
उवेहाए

"समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है —आरम्भ में ऐसा माननेवाले को श्रद्धा कदाचित् बाद में असम्यक हो जाती है।

समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है ' आरम्भ में ऐसा न माननेवाले को श्रद्धा कदाचित् बाद में वैसी नहीं रहती' —सम्यक हो जाती है।

"समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है' आरम्भ में ऐसा न माननेवाले की श्रद्धा कदाचित् बाद में वैसी नहीं रहती असम्यक हो जाती है।

समय—जिन-कथित धर्म—ही सत्य है ऐसा माननेवाले के सम्यक अथवा सम्यक् तत्त्व सम्यक् विचार से सम्यक् ही होते हैं।

"समय—जिन कथित धर्म—ही सत्य है ऐसा न माननेवाले के सम्यक अथवा तत्त्व असम्यक् विचार के कारण असम्यक् ही होते हैं।

५८—उवेहमाणो अणुवेहमाण बूया-उवेहाहि समियाए, इच्चेवं तत्थ संधी झोसिओ भवइ, से उट्ठियस्स ठियस्स गइ समणुपासह, इत्थवि बालभावे अप्पाण नो उवदंसिज्जा

५६—तुमसि नाम मल्लेव ज हंतव्वति मन्नसि, तुमसि नाम सच्चेव ज अज्जावेयव्वति मन्नसि, तुमसि नाम सच्चेव ज परियावेयव्वति मन्नसि एव ज परिघितव्वति मन्नसि, ज उद्वेयव्वति मन्नसि,

५८—सत्यदर्शी संशयग्रस्त से कहे – सम्यक रूप [illegible] विचार कर इस तरह संयम में प्रवृत्ति से ही कर्म का नाश होता है।

उत्थित और स्थित की गति को अच्छी तरह देख

अपनी आत्मा को इस बाल-भाव में उपदर्शित न कर।

५९—हे पुरुष। जिसे तू मारने की इच्छा करता है विचार कर [illegible] भी तेरे जैसा ही सुख दुःख का अनुभव करनेवाला प्राणी है; जिस पर हुकूमत करने को इच्छा करता है विचार कर वह भी तेरे जैसा ही प्राणी है; जिसे दुःख देने का विचार करता है विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है; जिसे अपने वश में रखने की इच्छा करता है विचार कर वह तेरे जैसा ही प्राणी है; जिसके प्राण लेने की इच्छा करता है विचार कर [illegible] तेरे जैसा ही प्राणी है।

अजू चेयपडिबुद्धजीवी
तम्हा न हंता नवि घायए

अणुसंवेयणमप्पाणेणं जं हंतव्वं
नाभिपत्थए

६०—जे आया से विन्नाया
जे विन्नाया से आया
जेण वियाणइ से आया
तं पडुच्च पडिसंखाए

६१—एस आयावाई समियाए
परियाए वियाहिए त्ति बेमि
(श्रु० १ अ० ५ उ० ५)

सत् पुरुष इसी तरह विवेक रखता हुआ जीवन बिताता है। वह न किसी को मारता है और न किसी को घात करता है।

जो हिंसा करता है उसका फल पीछे उसे ही भोगना पड़ता है अतः वह किसी भी प्राणी की हिंसा करने की कामना न करे।

६०—जो आत्मा है वह विज्ञाता है। जो विज्ञाता है वह आत्मा है। जिससे जाना जाता है वह आत्मा है। जानने के सामर्थ्य के द्वारा ही आत्मा की प्रतीति सिद्ध होती है।

६१—जो व्यक्ति आत्मवादी है उसी का पर्याय—संयमानुष्ठान सम्यक् कहा गया है। ऐसा [redacted] कहता हूँ।

६२—अणाणाए एगे सोवट्ठाणा
अणाए एगे निरुवट्ठाणा
एय ते मा होउ
एय कुसलस्स दसण
तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे
तस्सन्नी तन्निवेसणे अभिभूय
अदक्खू

६३—अणभिभूए पभू निरालंबणयाए
जे मह अबहिमणे

६४—पवाएण पवाय जाणिज्जा

६२—कई अनाज्ञा में उद्यमी होते हैं। कई आज्ञा में निरुद्यमी होते हैं। यह हाल तेरा न हो।

यह कुशल पुरुष का दर्शन है गुरु की दृष्टि से देखनेवाला, गुरु की निर्लोभ वृत्ति से चलने वाला गुरु को आगे रखने वाला गुरु में पूर्ण श्रद्धा रखने वाला और सदा गुरु के समीप रहने वाला शिष्य दुर्गुणों को जीत कर द्रष्टा बनता है।

६३—जो अपने विनय में महान् है जिसका मन दृष्टि से जरा भी बाहर नहीं वह किसी से अपराजित शिष्य निरालम्बन में—सब किसी में उच्च भावना के आधार पर टिके रहने में—समर्थ होता है।

६४—प्रवाद से प्रवाद को जानो। कथन से कथन को जानो।

६५—सहसंमइयाए परवागरणेण अन्नेसिं वा अंतिए सुच्चा

६६—निद्देसं नाइवट्टेज्जा मेहावी सुपडिलेहिया सव्वओ सव्वप्पणा सम्मं समभिण्णाय

६७—इह आरामं परिण्णाय अल्लीणे गुत्ते परिव्वए

६८—निट्ठीयट्ठी वीरे आगमेण सया परक्कमेज्जासि त्ति बेमि

६९—उड्ढं सोया अहे सोया तिरियं सोया वियाहिया।

६५—अपनी बुद्धि से अनुभवियों के वचन से अथवा दूसरों से सुनकर ही परमार्थ जाना जाता है।

६६—मेधावी सर्व प्रकार से सर्वतो भाव से अच्छी तरह जान लेने पर आज्ञा का उल्लंघन न करे।

६७—इस संसार में संयम ही सच्चा आराम है यह जानकर मुमुक्षु इन्द्रियों को वश कर संयम में तल्लीन हो उसका पालन करे।

६८—निष्ठावान् आत्मार्थी सदा आगम के अनुसार पराक्रम करे।

६९—ऊर्ध्व स्रोत है अधः स्रोत है तिर्यक दिशा में भी स्रोत है। देख! इन पाप—प्रवाहों को ही स्रोत

६५—सहसम्मइयाए परवागरणेणं अन्नेसिं वा अंतिए सुच्चा

६६—निद्देसं नाइवट्टेज्जा मेहावी सुपडिलेहिया सव्वओ सव्वप्पणा सम्मं समभिण्णाय

६७—इह आराम परिण्णाय अल्लीणे गुत्ते आरामो परिव्वए

६८—निट्ठीयट्ठी वीरे आगमेण सया परक्कमेज्जासि त्ति बेमि

६९—उड्ढं सोया अहे सोया तिरियं सोया वियाहिया।

६५—अपनी बुद्धि से अनुभवियों के वचन से अथवा दूसरों से सुनकर ही परमार्थ जाना जाता है।

६६—मेधावी सब प्रकार से सर्वतो भाव से अच्छी तरह जान लेने पर आज्ञा का उल्लङ्घन न करे।

६७—इस संसार में संयम ही सच्चा आराम है यह जानकर मुमुक्षु इन्द्रियों को वश कर संयम में संलीन [illegible] उसका पालन करे।

६८—निष्ठावान् आत्मार्थी सदा आगम के अनुसार पराक्रम करे।

६९—ऊर्ध्व स्रोत है अधः स्रोत है तिर्यक् दिशा में भी स्रोत है। देख! इन पाप—प्रवाहों को ही स्रोत

एए सोया वियक्खाया
जेहिं संगंति पासहा ॥

७०—आवट्टं तु पेहाए इत्थ विरमिज्ज-
वेयवी

७१—विणइत्तु सोयं निक्खम्म एस महं
अकम्मा जाणइ पासइ पडिलेहाए
नावकंखइ

७२—इह आगइं गइं परिन्नाय
अच्चेइ जाइमरणस्स वट्टमग्गं
विक्खायरए

शब्द निपुत
की पहुँच
कर्म मल
गेता है।

गोल। वह
न कृष्ण है
। वह न
त है न
ककश
है न

७३—सव्वे सरा नियट्टन्ति
तक्का जत्थ न विज्जइ
मइ तत्थ न गाहिया
ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने
से न दीहे न हस्से न वट्टे
न तंसे न चउरंसे न परिमंडले
न किण्हे न नीले न लोहिए
न हालिद्दे न सुक्किल्ले
न सुरभिगंधे न दुरभिगंधे
न तित्ते न कडुए न कसाए
न अंबिले न महुरे न कक्खडे
न मउए न गरुए न लहुए
न उण्हे न निद्धे न लुक्खे

७३—उस दशा का वर्णन करने में सारे शब्द निवृत्त हो जाते—समाप्त हो जाते हैं। वहाँ तर्क की पहुँच नहीं और न बुद्धि उसे ग्रहण कर पाती है। कर्म मल रहित केवल चैतन्य ही उस दशा का ज्ञाता होता है।

मुक्त आत्मा न दीर्घ है न ह्रस्व न वृत्त—गोल। वह न त्रिकोण है, न चौरस, न मण्डलाकार वह न कृष्ण है न नील न लाल न पीला और न शुक्ल ही। वह न सुगन्धि वाला है, न दुर्गन्धि वाला है। वह न तिक्त है न कडुआ न कषैला न खट्टा और न मधुर। वह न कर्कश है न मृदु। वह न भारी है न हल्का। वह न शीत है न उष्ण। वह न स्निग्ध है न रूक्ष।

न काऊ न रुहे न संगे
न इत्थी न पुरिसे न अन्नहा
परिन्ने सन्ने उवमा न विज्जए
अरूवी सत्ता
अपयस्स पयं नत्थि
से न सद्दे न रूवे न गंधे न रसे
न फासे इच्चेव त्ति बेमि।

(श्रु० १ अ० ५ उ० ६)

वह न शरीर धारी है न पुनर्जन्मा न आसक्त। वह न स्त्री है न पुरुष है, न नपुंसक।

वह ज्ञाता है, वह परिज्ञाता है, उसके लिए कोई उपमा नहीं।

वह अरूपी सत्ता है।

वह अपद है वचन अगोचर के लिए कोई पद—वाचक शब्द नहीं। वह शब्द रूप नहीं रूप-रूप नहीं, गन्ध रूप नहीं रस रूप नहीं, स्पर्श रूप नहीं। वह ऐसा कुछ भी नहीं। ऐसा मैं कहता हूँ।

धुयं

१—ओए समियदंसणे
दय लोगस्स जाणित्ता
पाईण पडीणं दाहिणं उदीणं
आइक्खे विभए किट्टे वेयवी

२—से उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा सुस्सूसमाणेसु पवेयए संतिं विरइं उवसमं निव्वाणं सोयं अज्जवियं मद्दवियं लाघवियं अणइवत्तियं

३—सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खिज्जा

[illegible]

को। [illegible]

ना [illegible]

[illegible] है

[illegible] लिए

उपवास, [illegible]

उपदेश है [illegible]

को [illegible]

४—अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खमाणे
नो अत्ताण आसाइज्जा नो पर
आसाइज्जा
नो अन्नाइ पाणाइ भूयाइ जीवाइ
सत्ताइ आसाइज्जा

५—से अणासायए अणासायमाणे
वज्झमाणाण पाणाण भूयाण जीवाण
सत्ताण जहा से दीवे असदीणे
एव से भवइ सरण महामुणी
(श्र० १ अ० ६ उ० ५)

४—विचार कर धर्म कथन करता हुआ भिक्षु अपनी आशातना न करे न दूसरे की आशातना करे। न अन्य प्राणी भूत जीव और सत्व की आशातना न करे।

५—यह आशातना न करनेवाला और आशातना न करानेवाला महामुनि उसी तरह शरणभूत होता है जिस तरह वध्य प्राणी भूत जीव और सत्वों लिए असंदीन द्वीप।

विमोहो

१—इहमेगेसिं आयारगोयरे नो सुनिसन्ते भवति

२—ते इह आरम्भट्ठी अणुवयमाणा हण पाणे घायमाणा हणओ यावि समणुजाणमाणा अदुवा अदिन्नमाययन्ति अदुवा वायाउ विउञ्जन्ति तंजहा अत्थि लोए नत्थि लोए धुवे लोए अधुवे लोए साइए लोए अणाइए लोए सपज्जवसिए लोए अपज्जवसिए लोए

विमोक्ष

१—इस संसार में कइयों को आचारगोचर [illegible] तरह ज्ञात नहीं होता।

२—वे इस संसार में आरम्भार्थी [illegible] सरण करते हुए कहते हैं [illegible] इस तरह वे घात करवाते हैं। [illegible] मोदन करते हैं। अथवा बिना [illegible] करते हैं। अथवा इस तरह [illegible] है लोक नहीं है, लोक [illegible] आदि है लोक आदि नहीं है [illegible]

सुकडेत्ति वा दुक्कडेत्ति वा कल्लाणेत्ति वा पावेत्ति वा साहुत्ति वा असाहुत्ति वा सिद्धित्ति वा असिद्धित्ति वा निरएत्ति वा अनिरएत्ति वा।

३—जमिण विप्पडिवन्ना मामग धम्म पन्नवेमाणा इत्थवि जाणह अकस्मात्

४—एव तेसिं नो सुयक्खाए धम्मे नो सुपन्नत्ते धम्मे भवइ

५—से जहेय भगवया पवेइय आसुपन्नेण जाणया पासया अदुवा गुत्ती वओगोयरस्स त्ति बेमि

लोक अपर्यवसित है ; यह सुकृत है यह दुष्कृत है ; यह पुण्य है यह पाप है ; यह साधु है यह असाधु है ; सिद्धि है सिद्धि नहीं है ; नरक है नरक नहीं है।'

३—इस प्रकार ये विभिन्न मतिवाले मेरा धर्म (ही सत्य है) ऐसी प्ररूपणा करते हैं। पर उनके कथन अकस्मात् हैं यह जानो।

४—इस तरह उनका कहा हुआ और प्ररूपित किया हुआ धर्म सु-आख्यात और सु प्रज्ञापित धर्म नहीं होता।

५—अगर धर्म कहे तो जैसा आशुप्रज्ञ भगवान ने जानकर देखकर कहा है वैसा कहे अथवा वचनगोचर की गुप्ति रखे—मौन रहे।

एकमित्ता अदुवा अप्पपाणे अप्पबीए अप्पहरिए अप्पोसे अप्पोदए अप्पुत्तिंगपणगदगमट्टियमक्कडासंताणए पडिलेहिय २ पमज्जिय २ तणाइं संथरिज्जा। तणाइं संथरित्ता एत्थवि समए इत्तरियं कुज्जा।

त सच्चं सच्चवाई ओए तिन्ने छिन्नकहंकहे आईयट्ठे अणाईए चिच्चाण भेउरं कायं संविहूय विरूवरूवे परीसहोवसग्गे अस्सिं विस्संभणयाए भेरवमणुचिन्ने। तत्थावि तस्स कालपरियाए सेवि तत्थ विअंतिकारए।

विशेष

[illegible]

रहित [illegible]

जल से [illegible]

मिट्टी [illegible]

तरह देखकर [illegible]

को [illegible]

मरण [illegible]।

[illegible]

कथा का [illegible]

मुक्त [illegible]

नाना प्रकार [illegible]

तथा [illegible]

सत्य [illegible]

मरण भी [illegible]

मरण है। [illegible]

करनेवाला [illegible]

इच्चेयं विमोहाययण हियं सुहं
खेम णिस्सेस आणुगामिय त्ति बेमि।
(सु० १ अ० ८ उ० ६)

७४—जस्स ण भिक्खुस्स एव भवइ —
से गिलामि च खलु अहं इमंमि
समए इमं सरीरगं अणुपुव्वेण
परिवहित्तए तणाइ संथरिज्जा
इत्थवि समए कायं च जोग च
ईरियं च पच्चक्खाइज्जा
त सच्च सच्चावाइ ' अनु-
गामिय त्ति बेमि
सु० १ अ० ८ उ० ७)

यह मरण भी मोह रहित व्यक्तियों का आश्रय-स्थल रहा है। यह हितकारी है, सुखकारी है, क्षेमकर है निश्रेयस है और अनुगामी है—पर जन्म में भी शुभ फल देनेवाला है। ऐसा मैं कहता हूँ।

२४—जिस भिक्षु को ऐसा हो कि मैं इस समय ग्लान हो गया हूँ, अनुक्रम से संयम पालन के लिए इस शरीर को परिवहन करने में असमर्थ हूँ, वह गुणों को घिसावे। वहाँ उस समय शरीर का योग का ईर्या का प्रत्याख्यान करे।

सत्यवादी ओजस्वी दुश्चीर्ण मरण को अपनावे। निश्चय ही यह मरण भी निश्रेयस है और अनुगामी है—पर जन्म में भी शुभ फल देनेवाला है। ऐसा मैं कहता हूँ।

२५—से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा (४) आहारेमाणे णो वामाओ हणुयाओ दाहिणं हणुयं संचारिज्जा आसाएमाणे दाहिणाओ वामं हणुयं नो संचारिज्जा आसाएमाणे। से अणासायमाणे लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ। जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

(श्रु १ अ० ८ उ० ६)

२६—जे भिक्खू अचेले परिवुसिए तस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-चाएमि अहं

२५—भिक्षु अथवा भिक्षुणी असनादिक का आहार करते हुए स्वाद लेने के लिए उस आहार को बायें गाल से दाहिने गाल की ओर न ले जावे और न स्वाद के लिए दक्षिण गाल से बायें गाल की ओर ले जाय। स्वाद न लेने से लाघवता प्राप्त होती है। तप भी प्राप्त होता है। भगवान ने जो कहा है, उसे ही जानकर, सर्व प्रकार से समभाव को जानते हुए रहे।

२६—जो भिक्षु अचेलक हो उसे यदि ऐसा हो कि मैं तृण स्पर्श को सह सकता हूँ शीत स्पर्श को सह सकता

तणफास अहियासित्तए सीयफासं अहियासित्तए तेउफास अहियासित्तए दसमसगफास अहियासित्तए एगयरे अन्नतरे विरूवरूवे फासे अहियासित्तए हिरिपडिच्छायण चऽहं नो सचाएमि अहियासित्तए एव से कप्पेइ कडियधण धारित्तए

२७—अदुवा तत्थ परक्कमत भुज्जो अचेल तणफासा फुसति सीयफासा फुसति तेउफासा फुसति दसमसगफासा फुसंति एगयरे अन्नयरे विरूवरूवे फासे अहियासेइ

[illegible] ताप स्पर्श को सह सकता हूँ दंश मशक-स्पर्श को सह सकता हूँ तथा अन्य भी अनुकूल प्रतिकूल स्पर्श सह सकता [illegible] पर नग्न रहने का परिषह नहीं सहन कर सकता तो उसे कटि-बंधन धारण करना कल्पता है।

२७—अथवा लज्जा को जीत सकता हो तो अचेल ही रहे। उस प्रकार रहते हुए तृण स्पर्श शीत-स्पर्श तेज-स्पर्श दंश-मशक-स्पर्श तथा ऐसे ही अन्य विविध प्रकार के स्पर्श स्पर्श करें—आ घेरें—तो उन्हें सहन करे।

अचेले लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया

(श्रु० १ अ० ८ उ० ७)

२८—जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायचउत्थेहिं तस्स ण नो एव भवइ—चउत्थं वत्थं जाइस्सामि।

से अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाइज्जा। अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारिज्जा नो धोइज्जा नो धोयरत्ताइं

इससे लाघवता प्राप्त होती है और तप भी प्राप्त होता है। भगवान ने जो कहा है उसे ही जानकर सब प्रकार से समभाव को जानते हुए रहे।

२८—जो भिक्षु तीन वस्त्र और चतुर्थ पात्र से रहता है उसके ऐसा विचार नहीं होता कि मैं चतुर्थ वस्त्र की याचना करूँगा।

वह भिक्षु एषणीय वस्त्र की याचना करे।

भिक्षु मिले हों वैसे ही वस्त्र धारण करे। वस्त्र न धोवे। धोये हुए और रंगे हुए वस्त्रों को धारण न करे। ग्रामान्तर

वत्थाइं धारिज्जा अपलिओवमाणे गामंतरेसु ओमचेलिए एयं खु वत्थधारिस्स सामग्गियं।

२९—अह पुण एवं जाणिज्जा—उवाइक्कंते खलु हेमंते गिम्हे पडिवन्ने अहापरिजुन्नाइं वत्थाइं परिट्ठविज्जा अदुवा संतरुत्तरे अदुवा ओमचेले अदुवा एगसाडे अदुवा अचेले। लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिज्जा (सु० १ अ० ८ उ० ४)

जाते हुए गोपन न करते हुए अल्प वस्त्रधारी हो। निश्चय ही यह वस्त्रधारी की सामग्री—उसका आचार है।

२९—अनन्तर ऐसा जानकर कि हेमन्त ऋतु बीत गई है ग्रीष्म ऋतु आ गई है, भिक्षु परिजीर्ण वस्त्रों को परठ दे, अथवा पास ही रखे अथवा कुछ रखे, अथवा एक साटिक हो जाय अथवा अचेलक हो जाय।

इस तरह लाघवता होती है, तप होता है।

यह जो सब भगवान ने कहा है उसे ही जानकर सर्वतः सर्व प्रकार से समभाव को जाने।

१०—से बेमि समणुन्नस्स वा असमणुन्नस्स वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा पायपुंछणं वा नो पाएज्जा नो निमंतिज्जा नो कुज्जा वेयावडियं परं आढायमाणे त्ति बेमि।

२१—धुवं चेयं जाणिज्जा असणं वा जाव पायपुंछणं वा लभिया नो लभिया भुंजिया णो भुंजिया पंथं विउत्ता विउक्कम्म विभत्तं धम्मं जोसेमाणे समेमाणे चलेमाणे पाइज्जा वा निमंतिज्जा वा कुज्जा

३०—मैं कहता हूँ—मुनि समनोज्ञ अथवा असमनोज्ञ असयति को अशन, पान, खाद्य स्वाद्य वस्त्र प्रतिग्रह और पादपुच्छन न दे, न उनके लिए उसे निमन्त्रित करे और न परम आदर से उसको वैयावृत्य करे।

३१—यह भी ध्रुव जानो—अशन पान खाद्य स्वाद्य वस्त्र प्रतिग्रह अथवा पादपोंछ मिला हो या न मिला हो भोगा हो या न भोगा हो पथ को छोड़ कर जाने से अन्य धर्म को मानने वाला असयति मुनि जाते समय

वेयावडियं परं अणाढायमाणे
त्ति बेमि (श्रु० १ अ० ८ उ० १)

३२—से समणुन्ने असमणुन्नस्स असणं
वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा
वत्थं वा कंबलं वा पडिग्गहं वा
पायपुछणं वा नो पाएज्जा नो निम-
तिज्जा नो कुज्जा वेयावडियं परं
आढायमाणे त्ति बेमि।

३३—समणुन्ने समणुन्नस्स असणं वा
(४) वत्थं वा (४) पाएज्जा
णिमंतेज्जा कुज्जा वेयावडियं परं
आढायमाणे त्ति
(श्रु० १ अ० ८ उ० २)

या आते समय कुछ दे या देने के लिए निमंत्रित करे अथवा वैयावृत्य करे तो उसे स्वीकार न करे।

३२—समनोज्ञ मुनि असमनोज्ञ को अशन, पान खाद्य स्वाद्य न दे न देने के लिए निमन्त्रित करे और न परम आदर से उसकी वैयावृत्य करे।

३३—समनोज्ञ मुनि समनोज्ञ मुनि को अशन पान, खाद्य स्वाद्य वस्त्र पात्र प्रतिग्रह और पादपुंछन देने के लिए निमन्त्रित करे और परम आदर भाव से उसकी वैयावृत्य करे।

३४—से भिक्खू परक्कमिज्ज वा चिट्ठिज्ज वा निसीइज्ज वा तुयट्टिज्ज वा सुसाणंसि वा सुन्नागारंसि वा गिरिगुहंसि वा रुक्ख-मूलंसि वा कुम्भारायतणंसि वा हुरत्था वा कहिंचि विहरमाणं तं भिक्खुं उवसंकमित्तु गाहावई बूया आउसंतो समणा। अहं खलु तव अट्ठाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पाय-पुंछणं वा पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएमि आवसहं वा समुस्सिणोमि से भुंजह वसह। आउसंतो समणा! भिक्खू तं गाहावइं समणसं

३४—श्मशान में शून्यागार में गिरि गुहा में वृक्ष के मूल में कुम्हार के आयतन में अथवा अन्य कहीं साधना करते हुए, बैठते विश्रांति लेते या विहरते [illegible] भिक्षु के समीप आकर कोई गाथापति कहे आयुष्मान् श्रमण! मैं आपके लिए प्राणी भूत, जीव और सत्त्वों का समारंभ कर अशन पान, खाद्य स्वाद्य वस्त्र प्रतिग्रह कंबल अथवा पादपोंछन बनाकर या आपके लिए खरीद कर अथवा उधार लाकर अथवा दूसरे से छीनकर, अथवा दूसरे की अनुमति बिना लेकर अथवा कहीं से लाकर आपको देता हूँ अथवा आपके लिए आवास चिनाता हूँ आप इन्हें भोगें और इसमें रहें तो हे आयुष्मान् श्रमणो! वह भिक्षु उस समन सवयस्क गाथापति से कहे

सयस पडियाइक्खे आउसंतो । गाहावई नो खलु ते वयण आढामि नो खलु ते वयण परिजाणामि जो तुम मम अट्ठाए असणं वा (४) वत्थ वा (४) पाणाइ वा (४) समारम्भ समुद्दिस्स कीय पामिच्च अच्छिज्ज अणिसट्ठ अभिहड आहट्टु चेएसि आवसहं वा समुस्सिणासि। से विरओ आउसो गाहावई । एयस्स अकरणयाए

२१—से भिक्खु परक्कमिज्ज वा जाव हुरत्था वा कहिंचि विहरमाण त भिक्खु उवसकमित्तु गाहावई आयगयाए पेहाए असण वा (४) वत्थ वा (४) जाव आहट्टु चेएइ आवसह वा समुस्सिणाइ भिक्खू परिघासेउं

आयुष्मान् गाथापति ! तुमजो मेरे लिए अशन, पान खाद्य, स्वाद्य वस्त्र प्रतिग्रह कंबल पादपोंछन प्राणी भूत जीव और सत्त्वों का आरंभ कर करना चाहते हो अथवा खरीदकर अथवा उधार लाकर अथवा दूसरे से छीनकर अथवा दूसरे को अनुमति बिना लाकर अथवा कहीं से मेरे यहाँ लाकर मुझको देना चाहते हो अथवा आवास चिनाना चाहते हो सो मैं तुम्हारे इन वचन को आदर नहीं देता उन्हें स्वीकार नहीं करता । हे आयुष्मान् गाथापति ! इन बातों को न करने के लिए ही तो मैं विरत हुआ हूँ।

३५– श्मशान में शून्य आगार में गिरि गुहा में वृक्ष के मूल में, कुम्हार के आयतन में अथवा अन्य कहीं साधना करते हुए, रहते बैठते, विश्रांति लेते या विहरते हुए भिक्षु को देखकर, आत्मा में विचारकर उसके भोजन या रहने के लिए प्राणी भूत जीवों और सत्त्वों का आरंभ

त च भिक्खू जाणिज्जा सहसम्मइयाए परवागरणेण अन्नेसिं वा सुच्चा अयं खलु गाहावई ममअट्ठाए असणं वा (४) वत्थं वा जाव चेइसि आवसहं वा समुस्सिणाइ तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणाए त्ति बेमि

३६—भिक्खु च खलु पुट्ठा वा अपुट्ठा वा जे इमे आहच गथा वा फुसति से हता हणह खणह छिदह दहह पयह आलुपह विलुपह सहसाकारेह विप्परामुसह। ते फासे धीरो

कर अशन पान खाद्य, [illegible]
अथवा पादपोछन बनाये [illegible]
अथवा उधार लावे, [illegible]
की अनुमति बिना देवे [illegible]
उसके लिए आवास [illegible]
भिक्षु को अपनी बुद्धि से [illegible]
से सुनकर यह मालूम हो कि [illegible]
लिए वैसा कर रहा है तो [illegible]
कर गृहस्थ को मना करे—[illegible]
लिए अनेषणीय है—[illegible]

३६—कोई गाथा[illegible]
महा अर्थ व्यय कर [illegible]
न करने पर क्रोधित [illegible]
इसे मारो, पीटो, काटो, [illegible]

पुट्ठो अहियासए अदुवा आयारगोयरमाइक्खे तक्किया णमणेलिस अदुवा वइगुत्तीए गोयरस्स अणुपुव्वेण सम्मं पडिलेहए आयतगुत्ते बुद्धेहिं एयं पवेइयं। (श्रु० १ अ० ८ उ २)

३७—तं भिक्खु सीयफासपरिवेवमाणगायं उवसंकमित्ता गाहावई बूया आउसंतो समणा! नो खलु ते गामधम्मा उव्वाहति? आउसंतो गाहावई! नो खलु मम गामधम्मा उव्वाहंति, सीयफासं च नो खलु अहं संचाएमि अहियासित्तए। नो खलु मे कप्पइ अगणिकायं उज्जालित्तए वा पज्जालित्तए वा कायं आयावित्तए वा पयावित्तए वा, अन्नेसिं वा वयणाओ

मार डालो अथवा अनेक तरह से तंग करे तो इस तरह संकट में पड़ा हुआ वह धीर मुनि सब सहन करे अथवा तर्कपूर्वक अपना आचारगोचर बतलावे अथवा मौन से आत्मगुप्त हो गोचरी को अनुक्रम से शुद्धि करता हुआ विचरे। ऐसा मुनि ने कहा है।

३७—उस भिक्षु का शरीर शीत से काँपता देख गाथापति कहे—हे आयुष्मान् श्रमण! कहीं आपको इन्द्रिय विषय तो पीड़ित नहीं कर रहे हैं तो मुनि कहे: आयुष्मान् गाथापति! निश्चय ही मुझे ग्राम विषय नहीं सताते। शीत के स्पर्श को मैं सहन नहीं कर सकता। मुझे अग्निकाय जलाना या प्रज्वलित करना नहीं कल्पता। मैं आग भी नहीं ताप सकता। न अन्य को कहकर ऐसा कराना कल्पता है।

सिया स एवं वयंतस्स परो अगणिकायं उज्जालित्ता पज्जालित्ता कायं आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणाए त्ति बेमि

(श्रु० १ अ० ८ उ० ३)

३८—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ पुट्ठो अबलो अहमंसि नालमहमंसि गिहंतरसंकमणं भिक्खायरिय गमणाए से एवं वयंतस्स परो अभिहडं असणं वा (४) आहट्टु दलइज्जा से पुव्वामेव आलोइज्जा आउसंतो ! णो

अन्य कोई पदार्थ

।

अनुपूर्वी से

मरणों को

) किसी

खलु मे कप्पइ अभिहड असण वा (४) भुंजए वा पायए वा अन्ने वा एयप्पगारे
(श्रु० १ अ० ८ उ० ५)

३९—अणुपुव्वेण विमोहाइ,
जाइ धीरा समासज्ज ।
वसुमतो मइमतो,
सव्वं नचा अणेलिस ॥

४०—दुविहपि विइत्ताण,
बुद्धा धम्मस्स पारगा ।
अणुपुव्वीइ सइखाए,
आरभाओ तिउट्टई ॥

सम्मुख लाया हुआ अशन आदि अथवा अन्य कोई पदार्थ ग्रहण करना या खाना पीना नहीं कल्पता।

३९—संयमी प्राज्ञ और धीर पुरुष अनुपूर्वी से (साधना करता हुआ) सभी अनुपम धार्मिक मरणों को जान, मोह रहित मरणों में से (शक्ति अनुसार) किसी एक को अपना (समाधिमरण करे)।

४०—धर्म के पारगामी बुद्ध पुरुष पंडित और अपंडित द्विविध मरणों को समझ, यथा क्रम से संयम का पालन करते हुए मृत्यु के समय को जान आरम्भों से निवृत्त होते हैं।

४१—कसाए पयणू किच्चा,
अप्पाहारे तितिक्खए ।
अह भिक्खू गिलाइज्जा,
आहारस्सेव अन्तियं ॥

४२—जीवियं नाभिकङ्खेज्जा,
मरणं नोवि पत्थए ।
दुहओऽवि न सज्जिज्जा,
जीविए मरणे तहा ॥

४३—मज्झत्थो निज्जरापेही,
समाहिमणुपालए ।
अतो बहिं विऊस्सिज्ज,
अज्झत्थं सुद्धमेसए ॥

४१—वह कषायों को प्रतनु—क्षीण कर अल्पाहार करता हुआ रहे तथा तितिक्षा भाव रखे। जब भिक्षु ग्लान हो तो वह आहार के समीप न जाय—उसका सर्वथा त्याग कर दे।

४२—वह जीने की आकांक्षा न करे और न मरने की ही प्रार्थना—कामना—करे। वह जीवन और मृत्यु दोनों में ही आसक्त न हो।

४३—वह समभाव में स्थित हो, निर्जरा की अपेक्षा रखता हुआ समाधि का पालन करे। आभ्यन्तर और बाह्य ममत्व का त्याग कर [illegible] विशुद्ध अध्यात्म का अन्वेषण करे।

४४—जं किंचुवक्कमं जाणे,
आउ खेमस्समप्पणो ।
तस्सेव अन्तरद्धाए,
खिप्पं सिक्खिज्ज पण्डिए ॥

४५—गामे वा अदुवा रण्णे,
थंडिलं पडिलेहिया ।
अप्पपाणं तु विन्नाय,
तणाइं संथरे मुणी ॥

४६—अणाहारो तुयट्टिज्जा,
पुट्ठो तत्थऽहियासए ।
नाइवेलं उवचरे,
माणुस्सेहिं विपुट्ठव ॥

४४—यदि उसे अपने आयु क्षेम में किंचित् भी विघ्न मालूम दे तो उसके अंतर काल में पण्डित साधक शीघ्र ही भक्त परिज्ञा आदि को ग्रहण करे।

४५ ४६—ग्राम अथवा अरण्य में प्रासुक भूमि का प्रतिलेखन कर प्राणि रहित जगह जान मुनि तृण बिछावे। आहार का त्याग कर तृणों पर शयन करे, परीषहों से स्पृष्ट होने पर उन्हें सहन करे और मानुषिक उपसर्गों से स्पृष्ट होने पर मर्यादा का उल्लंघन न करे।

४७—ससप्पगा य जे पाणा,
जे य उड्ढमहाचरा।
भुञ्जंति मससोणियं,
न छणे न पमज्जए॥

४८—पाणा देहं विहिंसंति,
ठाणाओ नवि उब्भमे।
आसवेहिं विवित्तेहिं,
तिप्पमाणोऽहियासए॥

४९—गन्थेहिं विवित्तेहिं,
आउकालस्स पारए।
पग्गहियतरगं चेयं,
दवियस्स वियाणओ॥

४७—सरीसृप ऊर्ध्वचर अथवा अधःचर प्राणी मांस को नोचे अथवा शोणित का पान करें तो उनको न मारे और न उन्हें दूर करे।

४८—जीव जन्तु देह की हिंसा करते हों तब भी मुनि उस स्थान से अन्यत्र न जावे। हिंसा आदि आस्रवों से दूर रहकर तुष्ट हृदय से कष्टों को सहन करे।

४९—बाह्य और अभ्यन्तर ग्रंथियों से दूर रह कर समाधिपूर्वक आयुष्य को पूरा करे। गीतार्थ संयमी के लिए यह दूसरा इंगित मरण विशेष ग्राह्य है।

५०—अय से अवरे धम्मे,
नायपुत्तेण साहिए ।
आयवज्जं पडीयारं,
विजहिज्जा तिहा तिहा ॥

५१—हरिएसु न निवज्जिज्जा,
थण्डिलं मुणिया सए ।
विओसिज्ज अणाहारो,
पुट्ठो तत्थऽहियासए ॥

५२—इन्दिएहिं गिलायतो,
समियं आहरे मुणी ।
तहावि से अगरिहे,
अचले जे समाहिए ॥

५०—ज्ञातपुत्र के द्वारा अच्छी तरह कहा गया दूसरा इंगित मरण धर्म है इसमें खुद को छोड़ अन्य से प्रतिचार—सेवा—कराने का त्रियोग से त्याग करे।

५१—मुनि हरित—दूर्वादियुक्त भूमि—आदि पर न सोवे। भूमि को प्रासुक जानकर सोवे। शरीर को व्युत्सर्ग कर अनशन करे। वहां उपसर्गों से स्पृष्ट होने पर सहन करे।

५२—(निराहार के कारण) इन्द्रियों के ग्लान होने पर मुनि चित्त के स्थैर्य को रखे। इंगित मरण में अपने स्थान में हलन चलन आदि करता हुआ वह निन्द्य नहीं होता यदि वह भावना में अचल और समाहित होता है।

५३—अभिक्कमे पडिक्कमे,
सङ्कुचए पसारए ।
कायसाहारणट्ठाए,
इत्थयावि अचेयणो ॥

५४—परिक्कमे परिकिलते,
अदुवा चिट्ठे अहायए ।
ठाणे ण परिकिलते,
निसीइज्जा य अंतसो ॥

५५—आसीणेऽणेलिस मरण,
इन्दियाणि समीरए ।
कोलावास समासज्ज,
वितह पाउरे सए ॥

५३—इंगित मरण में मुनि काया को सहारा देने के लिए चक्रमण करे टहले अंगोपांगों को संकुचित करे प्रसारित करे अथवा इसमें भी अचेतन जडवत् निश्चल रहे।

५४—परिक्रान्त होने पर वह टहले अथवा यथावत् खड़ा रहे। यदि खड़ा रहने से परिक्रान्त हो तो वह अन्त में पुन बैठे।

५५—अनुपम मरण में आसीन मुनि इन्द्रियों को विषयों से हटावे घुन वाले पाटे के प्राप्त होने पर अन्य जीव रहित पाटे की गवेषणा करें।

५६—जओ वज्जं समुप्पज्जे,
न तत्थ अवलम्बए।
तउ उक्कसे अप्पाणं,
फासे तत्थऽहियासए॥

५७—अय चाययतरे सिया,
जो एवमणुपालए।
सव्वगायनिरोहेऽवि,
ठाणाओ नवि उब्भमे॥

५८—अय से उत्तमे धम्मे,
पुव्वट्ठाणस्स पग्गहे।
अचिरं पडिलेहित्ता,
विहरे चिट्ठ माहणे॥

५६—जिससे पाप की उत्पत्ति हो उसका अवलम्बन न करे। पाप कार्यों से बच अपनी आत्मा का उत्कर्ष करे। परिषहों से स्पृष्ट होने पर उन्हें सहन करे।

५७—अब आगे कहा जानेवाला पादोपगमन मरण इंगित मरण से भी बढ़कर है। जो इसका पालन करता है वह सारे अङ्गों के जकड़ जाने पर भी अपने स्थान से किंचित् मात्र भी नहीं हटता।

५८—यह आत्मधर्म पादोपगमन मरण पूर्व कथित मरणों से भी विशेष रूप से ग्राह्य है। प्रासुक भूमि को देख माहन—मुनि, वहीं रह पादोपगमन मरण का पालन करे।

५६—जओ वज्ज समुप्पज्जे,
न तत्थ अवलम्बए ।
तउ उक्कसे अप्पाणं,
फासे तत्थऽहियासए ॥

५७—अय चाययतरे सिया,
जो एवमणुपालए ।
सव्वगायनिरोहेऽवि,
ठाणाओ नवि उब्भमे ॥

५८—अय से उत्तमे धम्मे,
पुव्वट्ठाणस्स पग्गहे ।
अचिरं पडिलेहित्ता,
विहरे चिट्ठ माहणे ॥

५६—जिससे पाप की उत्पत्ति हो उसका अवलम्बन न करे। पाप कार्यों से बच अपनी आत्मा का उत्कर्ष करे। परिषहों से स्पृष्ट होने पर उन्हें सहन करे।

५७—अब आगे कहा जानेवाला पादोपगमन मरण इंगित मरण से भी बढ़कर है। जो इसका पालन करता है वह सारे अंगों के जकड़ जाने पर भी अपने स्थान से किंचित् मात्र भी नहीं हटता।

५८—यह आत्मधर्म पादोपगमन मरण पूर्वकथित मरणों से भी विशेष रूप से ग्राह्य है। प्रस्तुत मुनि के देह मोहन—मुनि यहीं यह पादोपगमन मरण का धारण करे।

९९—अचित्त तु समासज्ज,
ठावए तत्थ अप्पग ।
वोसिरे सव्वसो काय,
न मे देहे परीसहा ॥

१०—यावज्जीव परीसहा,
उवसग्गा इति सङ्खया ।
संवुडे देह भेयाए,
इय पन्नेऽहियासए ॥

११—भेउरेसु न रज्जिज्जा,
कामेसु बहुतरेसुवि ।
इच्छा लोभ न सेविज्जा,
धुववन्न सपेहिया ॥

५९—अचित्त स्थान को प्राप्तकर वहाँ अपने आपको स्थित करे। काया को सर्वशः व्युत्सर्ग करे और परिषहों के आने पर सोचे मेरे शरीर में परीषह नहीं है।

६०—जब तक यह जीवन है तब तक ये परीषह और उपसर्ग हैं ऐसा जानकर देह-भेद के लिए संवृत प्राज्ञ उनको समभाव से सहन करे।

६१—वह नश्वर विपुल कामभोगों में रंजित न हो। ध्रुव वर्ण—मोक्ष—की ओर दृष्टि रख, वह इच्छा और लोभ का सेवन न करे।

६२—सासएहिं निमन्तिज्जा,
दिव्वमाय न सद्दहे ।
तं पडिवुज्झ माहणे
सव्वं नूमं विहूणिया ॥

६३—सव्वट्ठेहिं अमुच्छिए,
आउकालस्स पारए ।
तितिक्खं परमं नच्चा,
विमोहन्नयरं हियं ॥
त्तिबेमि ॥

६२—कोई जीवनपर्यन्त नहीं नाश होनेवाले शाश्वत ऐश्वर्य के लिए निमंत्रित करे, तो भी मुनि उस देव माया में विश्वास न करे। हे माहन! उसको अच्छी तरह समझ सब प्रपंच का त्याग कर।

६३—सर्व इन्द्रिय विषयों में मूर्छित न होता हुआ वह आयुष्य को पूर्ण करे। तितिक्षा को परम धर्म समझ मोह रहित मरणों में से किसी एक को धारण करना अत्यन्त हितकर है। ऐसा मैं कहता हूँ।

